योगविद्या

वर्ष 14 अंक 10
अक्टूबर 2025

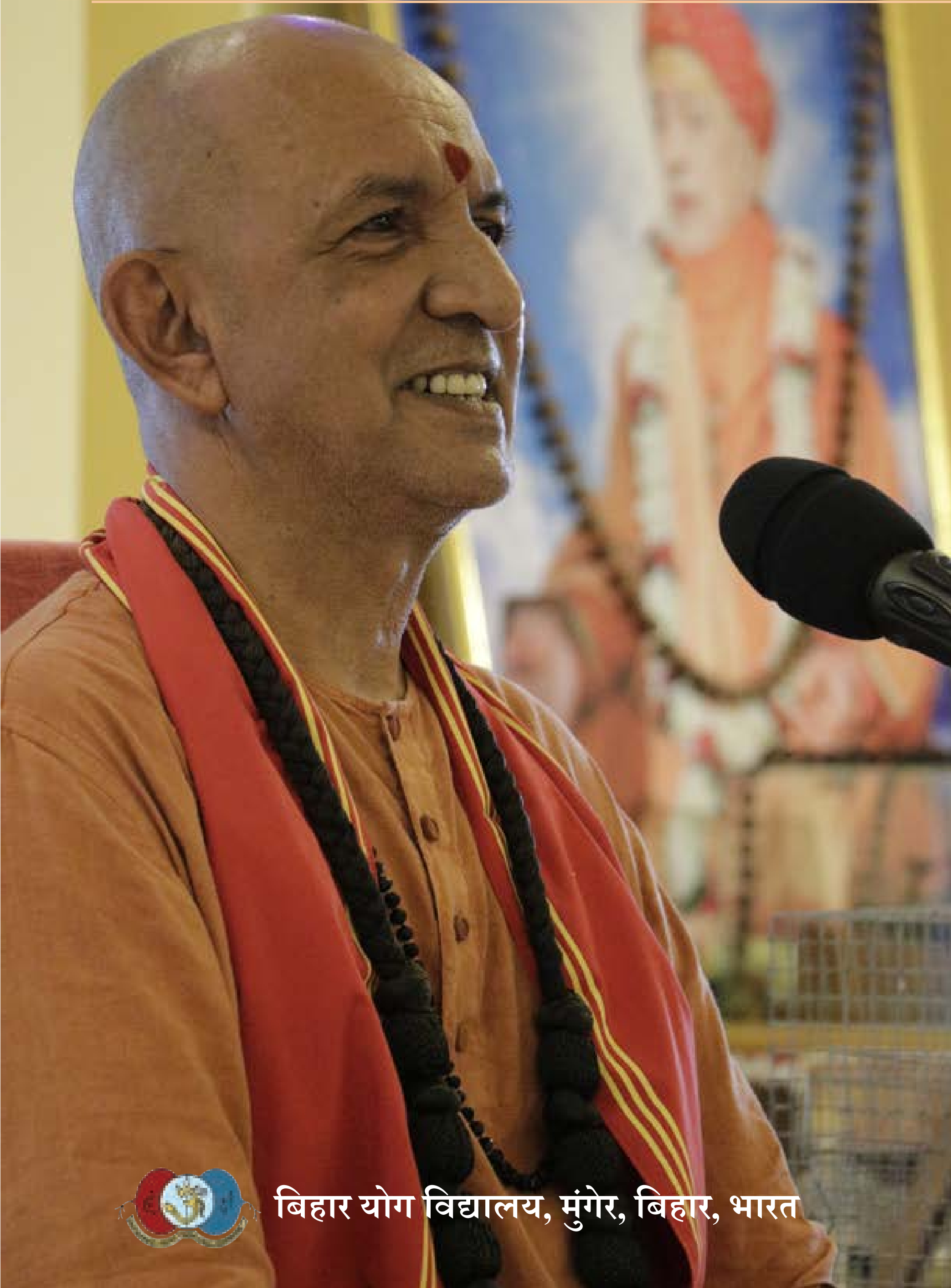

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

प्लेट: भारत योग यात्रा 2025

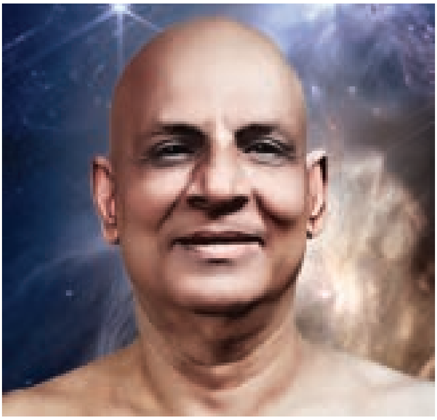

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

संतुलित जीवन

अपने सभी दायित्वों के निर्वाह में नियमित रहना चाहिए। कई दिनों तक समय बर्बाद करते रहना और फिर कुछ दिन खूब मेहनत करना – यह शरीर के अंगों पर दबाव डालता है, और परिणामस्वरूप चक्कर आना, सीने में दर्द और कब्जियत जैसी शिकायतें आती हैं। अपने व्यस्त काम-काज के दौरान भी बीच-बीच में कुछ मिनटों का आराम ले लेना चाहिए। जीवन में विनियमन और अनुशासन आवश्यक है। आहार-विहार और सोने-जागने में संतुलन रहना चाहिए, न कम न ज्यादा। हमेशा सूझ-बूझ और समझदारी से काम लेना चाहिए।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय　　**सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

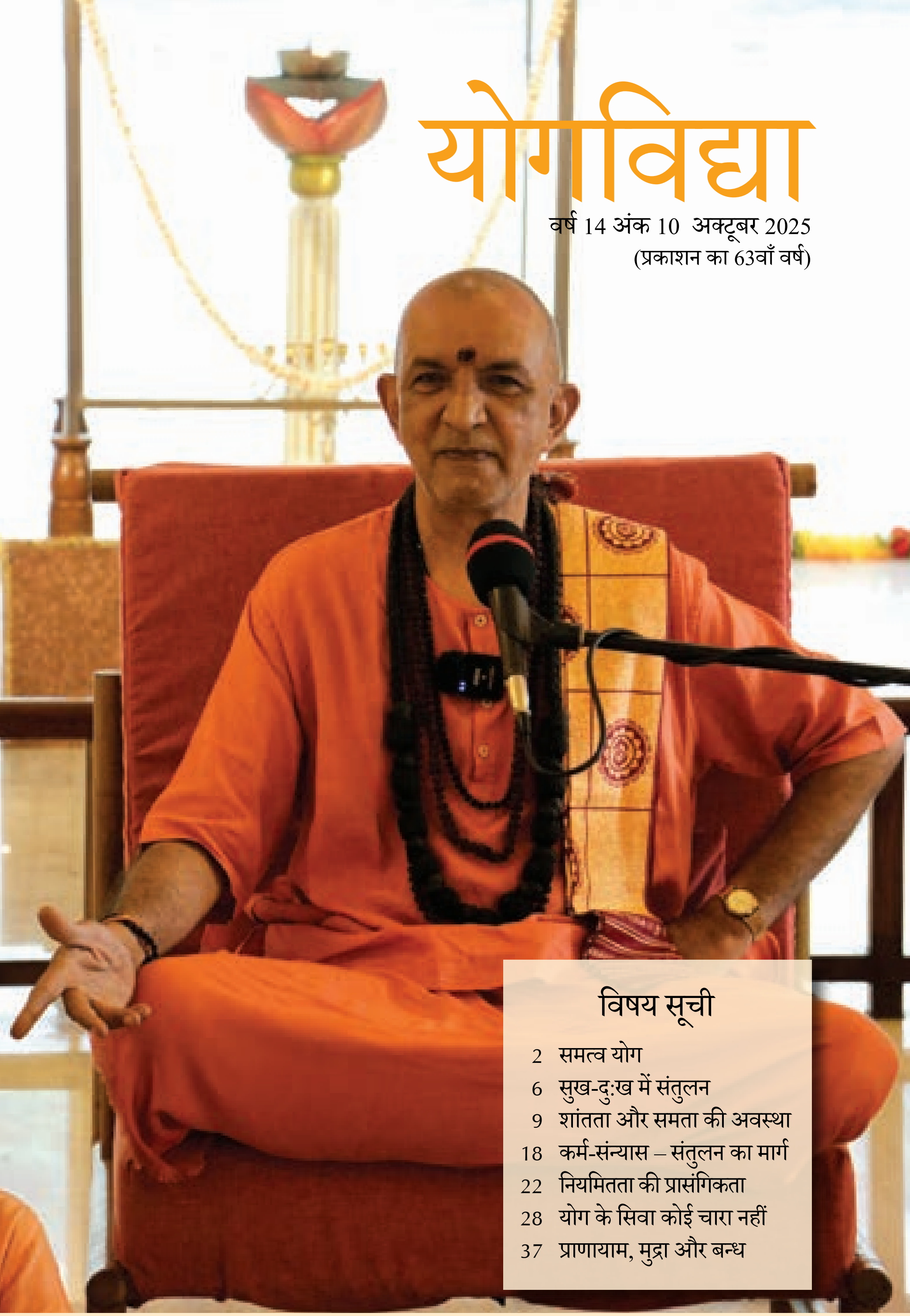

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 10 अक्टूबर 2025
(प्रकाशन का 63वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 समत्व योग
6 सुख-दु:ख में संतुलन
9 शांतता और समता की अवस्था
18 कर्म-संन्यास – संतुलन का मार्ग
22 नियमितता की प्रासंगिकता
28 योग के सिवा कोई चारा नहीं
37 प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

समत्व योग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सांसारिक लोग सामान्यतः अपनी सफलता से प्रसन्न और विफलता से दुःखी होते हैं। परन्तु देखा जाए तो सुख और दुःख मन की अवस्थाएँ मात्र हैं। यदि आप एक सच्चे समभावी योगी बनना चाहते हैं, तो आपको सभी अवस्थाओं एवं परिस्थितियों में मन को संतुलित बनाये रखना होगा। निःसन्देह यह कठिन है, परन्तु आपको निरन्तर अभ्यास से मन को अनुशासित करना होगा। किसी

भी प्रकार आपको यह करना ही होगा। तभी आपको मन की शान्ति और सच्चा, स्थायी सुख प्राप्त होगा। जो अपने मन को सन्तुलित रखता है, वह ज्ञानी है। समत्व योग मन को ज्ञान के अवतरण के लिये तैयार करता है। समत्व योग की यही विशेषता है। समत्व योग का रहस्य और सार यही है।

किसी भी कर्म के प्रति थोड़ी-सी भी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। किसी भी कार्य को किसी भी समय छोड़ने के लिये आपको तैयार रहना चाहिए। किसी कार्य विशेष के लिए आपकी दैवी आवश्यकता हो सकती है। भले आपकी इच्छा हो या न हो, चाहे कार्य जैसा भी हो, आपको बिना किसी टालमटोल के तुरन्त ही उस देव-निर्देशित कार्य को करना पड़ेगा। परिस्थिति के अनुसार आपको उस कार्य को बीच में ही अधूरा छोड़ना भी पड़ सकता है। यही योग है। यहाँ कार्य के प्रति कोई आसक्ति नहीं है।

अधिकतर लोग कार्य के प्रति आसक्त हो जाते हैं। वे किसी कार्य विशेष को पसन्द करते हैं और उसी में रुचि लेते हैं। वे अन्य कार्यों को पसन्द नहीं करते। यदि परिस्थितिवश उनके पसन्द के कार्य को रोकना पड़े, तो वे उसे छोड़ना भी नहीं चाहते। वे जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले लेते हैं एवं चिन्ता, तनाव और भय में कार्य करते हैं। यह किसी भी प्रकार से योग नहीं है, क्योंकि यहाँ पर राजसिक गुण के कारण कार्य से आसक्ति है। सांसारिक लोग हमेशा आसक्ति के कारण कार्य करते हैं। इस कारण वे कष्ट पाते हैं। यदि कोई दैवी आवश्यकता हुई तो आप विश्व स्तरीय अभियान भी शुरू कर सकते हैं, पर ईश्वर के इच्छानुसार आपको उसे किसी भी क्षण रोकने के लिए तैयार रहना चाहिए, भले ही आपको उसमें कोई सफलता न मिली हो। सफलता या विफलता प्राप्त करना आपका उद्देश्य नहीं होना चाहिए। आप केवल ईश्वरीय आदेश का पालन कीजिये और युद्धस्थल में लड़ने वाले एक सिपाही की तरह कार्य करिये। ऐसे कार्यों में अत्यधिक आनन्द मिलता है क्योंकि इसमें कोई स्वार्थ नहीं है।

इस बात को अच्छी तरह से मन में बैठा लीजिये कि विश्व में होने वाले परिवर्तनों के बीच भी मन को संतुलित रखना है। दैवी इच्छा की पूर्ति के लिये कार्य कीजिये। किसी भी फल की आशा मत कीजिये। सभी कुछ ईश्वर-प्रणिधान के लिये कीजिये। संसार की भलाई के लिये ईश्वरीय इच्छानुसार कार्य कीजिये। दैवी शक्ति को बिना रुकावट के अपने जीवन में कार्य करने दीजिये। जैसे ही आपका अहंकार बीच में आया, तुरन्त ही दैवी शक्ति का प्रवाह रुक

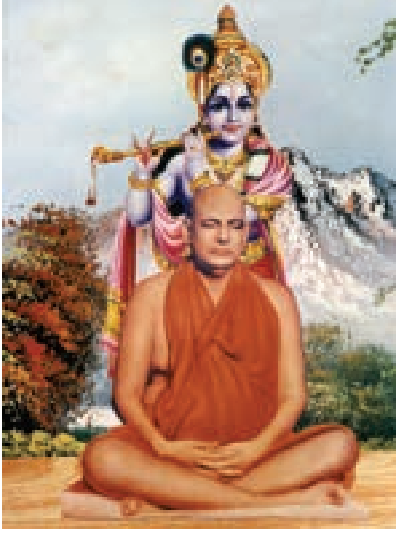

जाएगा। अपनी इन्द्रियों को प्रभु की लीला के लिए अच्छा माध्यम बनाइये। अहंकार को दूर करके अपने इस शरीर को बाँसुरी की तरह रिक्त कीजिये। तब वृन्दावन का बाँसुरी-बजैया आपकी बाँसुरी को भी बजाने लगेगा। वह आपके माध्यम से कार्य करने लगेगा। तब आप कार्य करते हुए भी विश्रान्ति का अनुभव करेंगे। आपको लगेगा कि ईश्वर मेरे माध्यम से कार्य कर रहे हैं। फिर आप सभी जिम्मेदारियों से मुक्त होकर एक पक्षी की तरह स्वतन्त्र हो जाएँगे। आप अनुभव करेंगे कि मैं बिल्कुल बदल गया हूँ। आपका अहंकार पुनः जोर मार सकता है। इसलिए सतर्क रहिये। सावधान रहिये। निरन्तर अभ्यास करते रहने से मन का अहंकार दूर हो जाएगा और आप एक सिद्ध कर्मयोगी बन जाएँगे। आपके सभी कर्म पूर्णतया निःस्वार्थ हो जाएँगे। सभी कर्मों का अन्त ज्ञान में होगा। यही समत्व योग है। भगवान कृष्ण ने अपनी शिक्षाओं में इसी योग का प्रतिपादन किया है –

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥2.48॥

'हे धनञ्जय! योग में स्थित होकर, सभी आसक्तियों को त्यागकर, सफलता एवं विफलता में सन्तुलित रहते हुए तथा ईश्वर का स्मरण करते हुए कर्म करो। समत्व ही योग है।'

'मेरे कर्म से ईश्वर प्रसन्न हों', आपको ऐसी छोटी-छोटी आसक्तियों को भी छोड़ना पड़ेगा। केवल ईश्वर के लिए कार्य कीजिए। तब खाना, चलना, बोलना, श्वास लेना, सोना, मल-मूत्र त्यागना भी यौगिक क्रियाएँ बन जाती हैं। कर्म पूजा बन जाते हैं। यह एक महान् रहस्य है। धीरे-धीरे कर्मयोग के अभ्यास द्वारा आपको इसे सीखना होगा। आपको अपने सभी कर्मों का आध्यात्मीकरण करना होगा, उन्हें अभ्यास द्वारा योग में बदलना होगा। केवल सिद्धान्त पढ़ने से कुछ नहीं होगा। कर्मयोग के रहस्यों को समझिये। निःस्वार्थ कर्म कीजिये। सच्चे समत्व योगी बनिये और अनन्त आत्मानन्द में डूब जाइये।

गुण और अवगुण, पुण्य और पाप, सुकृत और दुष्कृत – ये संतुलित मन वाले कर्मयोगी को प्रभावित नहीं करते, क्योंकि वह न तो अच्छे परिणाम से खुश होता है और न ही बुरे परिणाम की चिन्ता करता है। उसका मन सफलता और विफलता, दोनों में संन्तुलित रहता है। उसका मन हमेशा प्रभु में ही लगा रहता है। बन्धन में बाँधने वाले कर्मों को सन्तुलित मन से करने पर उनका प्रभाव नहीं रहता। समत्व योगी की इन्द्रिय विषयों के प्रति आसक्ति नहीं होती। वह निरन्तर निःस्वार्थ सेवा के द्वारा अपने मन को शुद्ध बना लेता है। वह कर्त्ताभाव का त्याग कर देता है। वह अपने शरीर को प्रभु के द्वारा ईश्वरीय कार्य के लिये दिया गया एक साधन मानता है। वह सभी कर्मों के लिए अन्दर स्थित दैवी सत्ता को जिम्मेदार मानता है। जो साधक सन्तुलित होता है, वह समत्व योग के विज्ञान में प्रवीण हो जाता है। यही कारण है कि भगवान कृष्ण कहते हैं –

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥2.50॥

'शुद्ध बुद्धि से युक्त होकर, वह अच्छे और बुरे, दोनों प्रकार के कर्मों को त्याग देता है। इसलिए अर्जुन! तू समत्व रूप योग में लग जा। यह समत्व रूप योग ही कर्मों में कुशलता है, अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।'

समत्व योगी, जिसका मन सन्तुलित है, सभी कर्मों के फल का त्याग कर देता है। फल से आसक्ति ही पुनर्जन्म का कारण है। जब सभी कर्म बिना किसी फल की आशा लिए, ईश्वर की इच्छा से उसके लिए ही होने लगते हैं, तब समत्व योगी को प्रकाश की प्राप्ति होती है। वह जन्म-मरण के बन्धन को काट देता है। उसे ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है एवं ब्रह्म-ज्ञान से मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति होती है। गीता में कहा भी गया है –

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥2.51॥

अर्थात् ज्ञान से युक्त हुआ मनीषी, कर्मों से प्राप्त होने वाले फलों को त्याग देता है एवं जन्म बन्धन से मुक्त हो, आनन्दमय पद को प्राप्त करता है। हे अमृतपुत्रों! आप सब भी समत्व योग के पथ पर आगे बढ़ते हुए उस परमपद को प्राप्त करें।

सुख-दु:ख में संतुलन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सुख और दु:ख में सन्तुलित रहने के लिए पहले सुख और दु:ख के अन्तर को जानना होगा। जो इसे जानता है, उसके लिए दु:ख एक शिक्षा है और सुख एक परीक्षा। दु:ख में आदमी बहुत कुछ सीखता है, मगर दु:ख को कोई पसन्द नहीं करता। सभी सुख चाहते हैं, पर सुख मिल जाने पर अपने आपको संभाल नहीं पाते। समृद्धि, यश, पद, प्रतिष्ठा – सब आदमी को कमजोर बना देते हैं। इसलिए जब तुम समृद्ध और शक्तिशाली बनते हो तब तुम्हें कठोर जीवन बिताना चाहिए। जो व्यक्ति सम्पन्न हो, जिसके हाथ में शक्ति हो, उसे अपनी अमीरी और ताकत को भुनाने या उनके उपभोग में लिप्त होने की आकांक्षा को त्याग देना चाहिए।

ईश्वर ने सोने में सुगंध नहीं डाली, गन्ने में फल नहीं लगाये, चन्दन वृक्ष में फूल नहीं दिये, विद्वान् को सम्पत्ति नहीं दी और राजा को दीर्घायु नही बनाया। भगवान के इस कार्य में एक रहस्य है। ये सभी वैसे ही काफी यशस्वी और उपयोगी हैं। इससे अधिक भाग्यशाली बनकर इनका अभिमान बढ़ जाता और वही इनके पतन का कारण बनता। इसलिए व्यक्ति को ऐश्वर्य और सामर्थ्य प्राप्त होने पर भी विनयशील रहना चाहिये।

भगवान हमें जो देता है, क्यों देता है? एक आदमी को आखिर चाहिए ही क्या? खाने को दो रोटी, रहने को एक छोटा-सा मकान। भगवान हमें समृद्धि इसलिए देता है कि हम उसको दूसरों में बाँट सकें। वह हमको अपना माध्यम बनाता है। जब वह हमें एक करोड़ रुपया देता है, तब हम कहते हैं कि 'भगवान ही जाने, क्यों देता है। हमें तो उसकी जरूरत नहीं रहती, क्या करें, उसको खा नहीं सकते।' वह मुझे एक करोड़ रुपये देता है और कहता कि इसमें से अपनी तनख्वाह निकाल लो और बाकी जरूरतमंदों में बाँट दो। वह मुझे इस धन का ट्रस्टी बना देता है, माध्यम बना देता है। अपने ऊपर खर्चा भी करना चाहोगे तो कितना करोगे? खाने पर, कपड़ों पर, अन्य आवश्यकताओं पर लाख, दस लाख? बचे हुए नब्बे लाख का क्या करोगे? भगवान बोलते हैं कि मैं सबके लिए दे रहा हूँ और हम सोचने लगते हैं कि सारा मेरे लिए है। हम तो ट्रस्टी हैं, हमें अपनी बुद्धि, ऐश्वर्य और अधिकारों का उपयोग जनहित में करना चाहिए।

जिन लोगों को तुम 'दूसरा' समझते हो, उनके लिए दया, सहानुभूति एवं करुणा का अनुभव करो। 'दूसरे' से मेरा मतलब है, जिन्हें तुम अपना नहीं समझते। तुम अपने पुत्र को दूसरा नहीं कह सकते, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे पिता, वे सब तुम्हारे हैं। 'मेरे पिता', 'मेरी माँ', 'मेरी पत्नी', 'मेरा बच्चा' सब कुछ मेरा ही मेरा है। जिनको तुम अपना न कह सको, उन्हीं के साथ अपना जीवन बाँटने का प्रयास करो, तभी तुम्हें एक उच्चतर अवस्था की झलक मिल सकेगी। यदि तुम्हारा मन 'मेरा-मेरा' में ही उलझा रहेगा, तो बहुत संकीर्ण दायरे में सीमित होकर रह जायेगा। तुम्हारी चेतना भी बहुत सीमित दायरे में सिमटकर रह जायेगी। महाभारत के अनुसार, 'यह मेरा है, वह तुम्हारा है, जिनकी बुद्धि इसी प्रकार विचारती है, वे चेतना के निम्न स्तर पर रहते हैं।'

अयं निज: परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

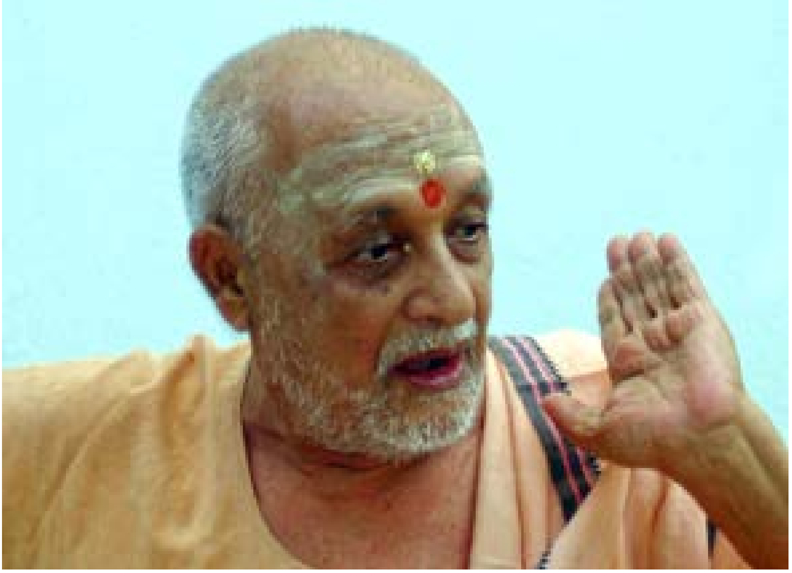

जो लोग बड़े दिलवाले होते हैं, जिनकी चेतना का विस्तार विशाल स्तर पर होता है, उनके लिए सम्पूर्ण मानवता ही एक परिवार की भाँति हो जाती है, *वसुधैव कुटुम्बकम्*। पूरा विश्व एक परिवार है। एक समुदाय नहीं, एक परिवार। तुम्हारी सम्पन्नता जिसका तुम आनन्द लूटते हो, जिन अधिकारों का तुम प्रयोग करते हो, तुम्हारे पास जो प्रेम, दया, करुणा है, सबके साथ बाँटो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो वही शक्ति तुम्हारे लिए समस्याएँ खड़ी कर देगी। सम्पन्नता एक नासूर बन जायेगी। अमीर कहलाने वाले लोग बहुत दु:खी हैं, परेशान हैं। जिनके पास सत्ता है, शक्ति है, वे भी दु:खी रहते हैं। बिना नींद की गोली खाये सो नहीं सकते हैं।

दान, भोग और नाश – धन की यही तीन गतियाँ हैं। उत्तम वृत्ति के लोग संचित धन का कल्याण-कार्यों में दान करते हैं, मध्यम वृत्तिवाले उससे अपनी सुख-समृद्धि के साधन बढ़ाते हैं, परन्तु जो न दान करते हैं और न भोग करते हैं, ऐसे मनुष्यों का धन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

अपना दु:ख अकेले भोगो, पर अपना सुख बाँटो। लोग अपना दु:ख बाँटते हैं और सुख अकेले भोगते हैं, कमरे में ताला लगाकर, अन्दर-ही-अन्दर। अपना सुख बाँटना और अपना दु:ख अकेले भोगना सीखो। तब सुख-दु:ख तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकेंगे।

शांतता और समता की अवस्था

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

यौगिक जीवनशैली उन संस्कारों और स्थितियों को परिभाषित करती है जिन्हें हमारी आंतरिक प्रतिभा के प्रस्फुटन हेतु विकसित किया जाना चाहिए। यही जीवनशैली के यम और नियम हैं।

आरोपित नैतिकता और स्वाभाविक सदाचार

पाँच साल पहले तक, विभिन्न लेखकों और टीकाकारों की किताबें पढ़कर, मैं भी हर किसी की तरह यही सोचता था कि यम और नियम योग की नैतिक आचार संहिता हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में जब मैंने योगविद्या को गहराई से समझने की कोशिश की तो यह स्पष्ट हो गया कि सदाचार हर किसी के जीवन की स्वाभाविक आकांक्षा और लक्ष्य है।

आप सदाचार को कैसे समझते हैं, यह आपकी अपनी मानसिकता से परिभाषित होता है। जो अच्छे आचरण आपके लिए स्वाभाविक हैं, उन्हें आप अपनी स्वाभाविक अभिव्यक्ति कहते हैं। जो अच्छे आचरण आपको सामाजिक और पारिवारिक आवश्यकताओं के कारण सिखाए जाते हैं, उन्हें आप आरोपित या थोपा हुआ कहते हैं। बचपन में आपके पिता कहते थे, 'चोरी मत करो', 'झूठ मत बोलो'। जब आप बड़े हुए तो आपका धर्म आपको यही बात कहता है, 'तुम चोरी नहीं करोगे।' उस समय, जाने-अनजाने आप 'चोरी न करने' की शिक्षा को एक धार्मिक आदेश के रूप में मान लेते हैं, क्योंकि ऐसा धर्मशास्त्र कहते हैं। यहाँ आपकी समझ में एक भेद आ जाता है।

आपकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति, जिस पर आप हमेशा से विश्वास करते थे और जिसके कारण आपने कभी चोरी नहीं की, अचानक एक अलग रंग ले लेती है। आपको एहसास होता है कि आप एक धार्मिक आदेश का पालन कर रहे हैं, और फिर आप सवाल करने लगते हैं, 'क्या मैं धार्मिक हूँ? क्या मुझे ईश्वर में विश्वास है, क्या मैं उनके आदेशों का उल्लंघन करने से डरता हूँ? मैं बचपन से उस आदेश का पालन करते रहा हूँ जो ईश्वर ने मूसा को दिया था। फिर तो मैं अवश्य ही धार्मिक हूँ।' आप समझे? एक है स्वाभाविक आचरण, दूसरा है उस स्वाभाविक आचरण की किसी सामाजिक व्यवस्था या धार्मिक

विश्वास के साथ पहचान। जब आप अच्छे आचरण को सामाजिक और धार्मिक मानदंडों के साथ पहचानते हैं, तो वे नैतिकता बन जाते हैं जिसका पाठ आपको पढ़ाया जा रहा है। यदि आप नैतिकता के आवरणों को हटा देते हैं, तो क्या बचता है? अच्छा, सदाचारी, सकारात्मक, रचनात्मक, उत्थानकारी आचरण – इसके अलावा कुछ नहीं।

इसे समय दें

योग में सदाचार को यम और नियम के रूप में पहचाना जाता है, इस समझ के साथ कि इसे विकसित करने में समय लगता है। सही और सकारात्मक आचरण विकसित करने में समय जरूर लगता है। कोई भी व्यक्ति परिपूर्ण पैदा नहीं होता। सही चीज को सही तरीके से समझने और करने में समय लगता है।

धर्म में यह छूट नहीं दी जाती। इसलिए, बहुत-से लोग जब एक धार्मिक चेतना और मन विकसित करते हैं, तो वे उम्मीद करते हैं कि चीजें तुरंत घटित होंगी। पवित्रता तुरंत आनी चाहिए, संयम तुरंत आना चाहिए। वे सोचते हैं, 'मुझे आज और अभी शुद्ध, पवित्र, सदाचारी हो जाना चाहिए।' इससे अपने बारे में अवधारणा बदल जाती है।

पहले जब मैं यूरोप, अमेरिका और अन्य देशों में योग सिखाता था, तो मैं देखता था कि लोग पहली बार योग कक्षा में आते थे और अगले दिन से

ही दुनिया के सबसे आध्यात्मिक व्यक्ति की तरह व्यवहार करने लगते थे, पूर्ण शुद्धता और संयम के साथ। वे धीमी, कोमल हरकतें करने लगते थे, आकाश की ओर देखकर उसकी प्रशंसा करते थे, फूलों की प्रशंसा करते थे और कहते थे, 'ओह, तुम कितने सुंदर हो। नमस्ते। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।' वे जबरदस्ती बदलने की कोशिश करते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि योग का अभ्यास करके उन्हें आध्यात्मिक बनना है और उन्हें अपने जीवन में वह सब कुछ छोड़ देना चाहिए जो आध्यात्मिक नहीं है। इसलिए वे खुद के लिए दिखावा करते थे कि 'मैं आध्यात्मिक हो गया हूँ।' वैसे, उन्हें और कोई नहीं देख रहा होता था। उन्हें लगता था कि हर कोई उन्हें देख रहा है, लेकिन वे यह बात भूल जाते थे कि हर कोई वैसा ही करने की कोशिश कर रहा था!

लोग धीरे-धीरे आगे बढ़ने की प्रक्रिया को भूल जाते हैं, जो धैर्य की कमी को दर्शाता है। सांसारिक जीवन की तरह आध्यात्मिक जीवन में भी धैर्य की कमी होती है। यह कमी आपके पूरे जीवन, व्यक्तित्व और व्यवहार पर लागू होती है। इसलिए, यौगिक परम्परा में तितिक्षा को एक आवश्यक नियम के रूप में दिया गया है।

अधीरता का अवलोकन

आप अधीरता को कैसे नियंत्रित कर सकते हैं, जो न केवल अंदर महसूस की जाती है, बल्कि बाहरी वस्तुओं पर भी स्थानांतरित हो जाती है? एक उदाहरण देता हूँ। लोग कंप्यूटर पर काम करते हैं। उसके अन्दर का प्रोग्राम अपना काम करने में अपना समय लेता है। अब जो लोग उस प्रोग्राम को चला रहे हैं, वे अधीर हो जाते हैं और कहते हैं, 'ओह, इस कंप्यूटर पर डाटा अपलोड करने में दस मिनट लगते हैं। मुझे एक नया कंप्यूटर चाहिए जो एक मिनट में अपलोड कर दे।' या फिर वे कहते हैं, 'यह वाई-फाई बहुत धीमा है, मैं कंप्यूटर पर बस इंतजार कर रहा हूँ। मुझे 4G चाहिए ताकि मैं तुरंत काम कर सकूँ।'

ऐसी चीजें होती हैं न? ठीक है, हम मानते हैं कि उपकरणों को समय के साथ बदलना चाहिए, लेकिन यहाँ बात धैर्य की है, कैसे एक यांत्रिक व्यवहार आपके दिमाग को प्रभावित कर रहा है और इसे इतना तेज कर रहा है कि आप अपना धैर्य खो देते हैं। आप पाँच मिनट भी इंतजार नहीं कर सकते। आप परेशान हो जाते हैं, 'मैं इसे तेज करने के लिए क्या कर सकता हूँ?' इसलिए

आप अनुरोध करते हैं, 'मुझे एक तेज कंप्यूटर चाहिए।' लेकिन फिर आपको तेज कंप्यूटर दिलाने की प्रक्रिया में भी अपना समय लगता है।

देखा जाए तो एक सुपर-कंप्यूटर को भी अपना काम पूरा करने में समय लगता ही है। सिर्फ इसलिए कि आप चाहते हैं कि चीजें तेजी से हों, आप चाहते हैं कि हर किसी के पास सुपर-कंप्यूटर हो! समस्या यह है कि अगली पीढ़ी के सुपर-कंप्यूटर के आने पर उस सुपर-कंप्यूटर की गति भी धीमी लगेगी। मन उपकरण के साथ, समय के साथ भाग रहा है। इस तरह भागते रहने से मन संयम रखने, निरीक्षण करने और आराम करने की क्षमता खो देता है, जो धैर्य कहलाती है।

यह छोटा-सा उदाहरण दर्शाता है कि एक यांत्रिक वस्तु भी आपके मन को एक विशेष व्यवहार की ओर विवश कर सकती है। यहाँ आप चाह रहे हैं कि बाहरी वस्तु आपकी गति बढ़ाए। जब बाहरी गति बढ़ रही होती है, तो मन की चंचलता और विक्षिप्तता भी बढ़ती जाती है।

अगर आप आज के दौर में देखें कि लोग किसी चीज पर कितना और कितनी देर तक ध्यान केंद्रित कर पाते हैं, तो आप पाएंगे कि उनके ध्यान की क्षमता कम होते जा रही है। मानसिक विक्षिप्तता और उत्तेजना के कारण लोगों को ध्यान केंद्रित करना मुश्किल लगता है, और यही चंचलता है। यह मानसिक चंचलता, उत्तेजना और विक्षिप्तता मन की शांति और स्थिरता को खत्म कर रही है। एक बार मन की शांति और स्थिरता खत्म हो जाती है तो व्यक्ति अधीर हो जाता है और मन की भागदौड़ तेज हो जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को खुद को रोकना पड़ता है, और यही धैर्य है।

चंचल लहरें

चंचल और विक्षिप्त मन को ऐसी झील के रूप में देखा जा सकता है जिसका जल अशांत है। अगर बहुत ज्यादा हवा चल रही है तो झील का पानी अशांत होगा। पानी में झलकने वाली परछाइयों की स्पष्टता खत्म हो जाएगी। यह ऐसी स्थिति को दर्शाता है जहाँ बहुत सारे विचार मन में आ रहे हैं और आपका ध्यान अलग-अलग क्षेत्रों में भटक रहा है, जिससे आप शांत, केंद्रित और संयमित नहीं रह पा रहे हैं।

चंचलता मन की एक नकारात्मक अवस्था है, जिसकी विपरीत अवस्था है शांतता। अगर झील का पानी स्थिर हो जाए तो आप कहेंगे कि शांत हो

गया है। इस प्रकार स्थिरता, नीरवता और विक्षेप के अभाव की स्थिति शांतता कहलाती है। यह शांति नहीं है, बल्कि विघ्न और विक्षेप का अभाव है। शांति अलग चीज है, यहाँ हम शांतता की बात कर रहे हैं। आप इसे सिर्फ शब्दों का खेल समझ सकते हैं, लेकिन मुख्य मुद्दा यह है कि यह अवस्था उत्तेजित और उद्विग्न अवस्था के विपरीत है, और इस अवस्था को प्रयासपूर्वक बनाना पड़ता है।

शांतता यौगिक जीवन के यमों में से एक है। अंततः आपकी सजगता को, समझदारी को विकसित होना है। मन की सकारात्मक अवस्था को विकसित होना है। इसके लिए मन की वर्तमान अवस्था को बदलना होगा। यह परिवर्तन पहले यम, मनःप्रसाद से शुरू होता है, और धीरे-धीरे छठे यम तक आते-आते, आप एक शांत और संयमित अवस्था में पहुँच जाते हैं जो किसी भी चीज से विचलित नहीं होती।

युद्ध और शांति

जब मैं लगभग पंद्रह वर्ष का था, मैं पनामा के ऊपर से उड़ान भर रहा था। उसी दौरान वहाँ एक सैन्य तख्तापलट हुआ। पनामा के हवाई क्षेत्र में उड़ने वाले सभी विमानों को एक निश्चित समय के भीतर वहाँ से चले जाने का आदेश दिया गया और जो नहीं निकल सके, उन्हें उतरना पड़ा। हमने अभी-अभी यात्रा शुरू की थी, वहाँ से निकलने में समय लग सकता था और इसलिए हमारा विमान पनामा के हवाई अड्डे पर उतरा। तख्तापलट लगभग तीन घंटे पहले हुआ था, और हवाई अड्डे पर टैंक और सैनिक तैनात थे, जो किसी भी स्थिति से निपटने के लिए तैयार थे। हम सभी को विमान से उतरने का आदेश दिया गया और एक हॉल में ले जाया गया। हमारे सभी दस्तावेज जाँच-पड़ताल के लिए हमसे ले लिए गए।

जब हम हॉल में इंतजार कर रहे थे तब मैं हर किसी को देख रहा था। कुछ लोग इतने घबराए हुए थे कि वे लगातार धूम्रपान किये जा रहे थे। उन दिनों धूम्रपान को लोग स्वीकार कर लेते थे। ये लोग सिगरेट जलाते, कुछ कश लेते, फिर उसे बुझा देते। फिर दूसरी सिगरेट निकालते, दो कश लेते, उसे बुझा देते। तीसरी निकालते, और इसी तरह क्रम चलते रहता। वे पूरी सिगरेट भी नहीं पी पाते थे, इस बात से इतने घबराए हुए थे कि आगे क्या होगा। प्राय: हर व्यक्ति ऐसी ही घबराहट की स्थिति में था, जबकि मैं बस वहाँ बैठा सबको देख रहा था। लोग मेरे पास आते और कहते, 'आपको घबराहट नहीं हो रही? आप इतने शांत क्यों हैं?' मैं उनसे बस इतना ही कह सकता था, 'मैं अपना योगाभ्यास कर रहा हूँ।' उन दिनों योग एक ऐसा शब्द था जिसे किसी ने नहीं सुना था, इसलिए वे मुझे अजीब तरह से देखते थे।

उस घटना के दौरान मैं पहली बार शांतता और मानसिक उत्तेजना के बीच अंतर करने में सक्षम था, वे क्या दर्शाते हैं और उनका क्या मतलब है। मैं अपने मन को देख रहा था और खुद से पूछ रहा था, 'तुम तनावग्रस्त क्यों नहीं हो? तुम क्यों नहीं घबरा रहे?' मैंने खुद को देखा कि मैं क्या कर रहा था। मैं लंबी, धीमी और गहरी साँसें ले रहा था। मुझे इस बात का एहसास अचानक ही हुआ। मैं इसके बारे में अनजान था, मेरा शरीर अपने आप ऐसा कर रहा था। इस एहसास ने मुझे चौंका दिया, 'मेरा शरीर ऐसा कैसे कर रहा है?' फिर मैंने निरीक्षण जारी रखा और पाया कि बीच-बीच में मैं अपने मंत्र के बारे में सजग हो जाता था, जबकि अन्य समय यह सजगता खो जाती थी।

कुछ समय बाद मैं फिर से मंत्र के प्रति सजग हो जाता। मानो मंत्र मेरी चेतना की पृष्ठभूमि में निरन्तर चल रहा था और कुछ क्षणों के लिए मैं पहचान जाता कि मेरा मन मंत्र दोहरा रहा है। फिर मैं इधर-उधर देखता, दस्तावेजों के आने का इंतजार करता, और वह सजगता पीछे हट जाती।

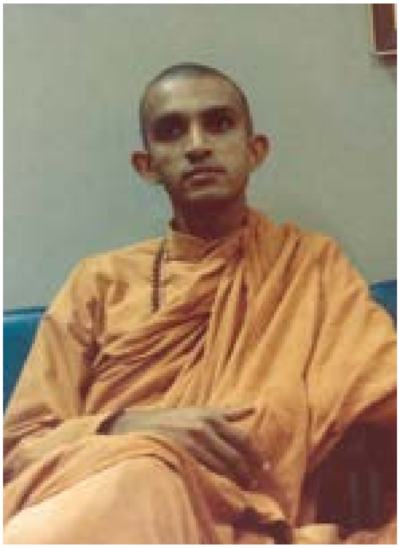

मैं उस समय इन दो चीजों के बारे में अत्यन्त सजग था। मेरी श्वास, जो मेरे जाने बिना ही बदल गई थी, और मंत्र। ऐसा लगा कि जैसे शरीर ने तनावपूर्ण परिस्थिति के प्रति खुद ही प्रतिक्रिया दी और स्वयं को शांत कर लिया। इसी तरह, मन ने तनावपूर्ण माहौल में सहारा दिया और अपने भीतर किसी चीज से जोड़ दिया जिससे मुझे लगा कि 'मैं सुरक्षित और निश्चिंत हूँ'। अगर मैं पीछे मुड़कर देखूँ कि उस दिन क्या हुआ, तो मैं कहूँगा कि ये दो चीजें ही थीं जिन्होंने मुझे उस तनाव भरे माहौल में शांतता का अनुभव कराया।

मेरे जीवन का एक और उदाहरण है जब मैं छह दिवसीय योम किप्पुर युद्ध में फंस गया था। उस समय, मैं लेबनान की राजधानी बेरूत में था, और अचानक ही युद्ध शुरू हो गया। मैं वहाँ एक योग कार्यक्रम संचालित करने गया था, लेकिन हवाई अड्डे पर उतरने के कुछ घंटों बाद ही सायरन बज गए और युद्ध शुरू हो गया। हमें अपने कमरों में ही रहना पड़ा। मैं हॉलिडे इन्न होटल की सबसे ऊँची मंजिल पर ठहरा था, और अपने कमरे से शहर में आग और धुएँ को देख सकता था। मैंने अगली उड़ान के बारे में पूछताछ की तो जवाब मिला, 'हवाई अड्डे पर बमबारी हुई है, रनवे क्षतिग्रस्त हो गया है, कोई भी विमान उड़ान नहीं भर रहा। हमें नहीं पता कि आगे क्या होगा। क्षमा करें, हम इस समय आपकी कोई मदद नहीं कर सकते।' होटल में रहने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

वहाँ रहते हुए मैंने कुछ तुर्की लोगों से दोस्ती कर ली जो रेस्तरां में सेवा करते थे। फिर एक दिन एक तुर्की बैरा मेरे पास आया और बोला, 'स्वामी,

आपको आज ही होटल छोड़ना होगा।’ मैंने पूछा, ‘क्यों?’ उसने कहा, ‘ओह, बस एक उड़ती खबर है कि सभी को आज होटल छोड़ना होगा।’ मैंने कहा, ‘मेरे पास ठहरने के लिए कोई जगह नहीं है। न तो हवाई अड्डा, न ही होटल।’ उसने कहा, ‘नहीं, आप मेरे घर चलिये।’ मैंने अपना सूटकेस पैक किया और उसके घर चला गया। उस शाम हॉलिडे इन्न पर बमबारी हुई और उसे तहस-नहस कर दिया गया। मैं इस परिवार के साथ पाँच दिन रहा और उन्होंने अपनी प्रसिद्ध तुर्की मेहमान-नवाज़ी से मेरी अच्छी खातिरदारी की। निश्चित रूप से मैं ऐसी सभ्यता का सम्मान करता हूँ जो अच्छाई और हमदर्दी को व्यक्त कर सकती है। फिर मुझे दस्तावेज़ और टिकट मिल गये, मैं वहाँ से चला गया।

युद्ध क्षेत्र में सात-आठ दिन बिताने के बाद, मैं अपने मन की स्थिति के बारे में सोचने लगा। मैंने पाया कि मुझे कोई डर या चिंता नहीं थी। मैं पूरी तरह सुरक्षित महसूस कर रहा था। शायद मेरी भारतीय दार्शनिक मानसिकता सक्रिय थी – ‘*जाको राखे साईयाँ मार सके न कोय*, अगर मुझे आज नहीं मरना है, तो बड़े-से-बड़ा बम भी मुझे नहीं मार सकता और अगर मुझे आज मरना है, तो घास का एक तिनका भी मुझे खत्म कर सकता है।’ इन विचारों ने मुझे हर दिन तनावमुक्त और खुश रहने दिया। आखिर अगर मुझे मरना है, तो मैं मरूँगा ही, लेकिन ‘हाय, मैं मरने वाला हूँ’ की चिंता क्यों?

उस परिस्थिति में मुझे भय, असुरक्षा, जीवन के लिए खतरा या मरने की चिंता क्यों नहीं हुई? उन दिनों मोबाइल फोन नहीं थे, और युद्धग्रस्त देश में तो सामान्य फोन भी दुर्लभ थे। कोई नहीं जानता था कि मैं जीवित भी हूँ या मर गया। उन्हें बस इतना पता था कि जिस होटल में मैं ठहरा था, उस पर बमबारी हुई थी। मैं अपने ठिकाने के बारे में किसी को नहीं बता सकता था। ऐसी परिस्थिति थी। फिर भी कोई चिंता नहीं। ऐसी मनोवस्था क्यों आई? एक विश्वास और समझ के कारण कि ‘अगर मुझे जाना है, तो मैं इसे रोकने के लिए कुछ नहीं कर सकता। अगर मुझे नहीं जाना है, तो ऐसा कुछ नहीं है जिससे आप मुझे जाने के लिए मजबूर कर सकें।’

इससे मुझे समझ आया कि स्वीकृति एक और गुण है जो शांतता में बड़ी भूमिका निभाता है। वर्तमान स्थिति की स्वीकृति। अगर वर्तमान स्थिति की स्वीकृति नहीं है तो शांतता महसूस नहीं की जा सकती, बल्कि संघर्ष और भ्रम ही रहेगा। अगर हम वर्तमान स्थिति को स्वीकार कर लेते हैं तो तुरंत शांति आ जाएगी।

हर दिन अपनी गाँठें सुलझाएँ

अगर कोई गलती करता है और वह इसे लेकर दूसरे व्यक्ति के पास जाता है तो अक्सर भ्रम और संघर्ष होता है। एक गर्म बहस होती है – 'तुमने ऐसा क्यों किया?' 'मैंने ऐसा जानबूझकर नहीं किया, यह तो बस हो गया।' कोई भी दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को देखने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि मन अशांत है। यदि आप किसी समझदार व्यक्ति के पास जाते हैं, तो वह गलती करने वाले व्यक्ति को देखकर बस मुस्कुराएगा, स्वीकार करेगा और अपनी शांत अवस्था बनाये रखेगा। वह इसलिए मुस्कुराएगा कि वह प्रतिक्रिया नहीं कर रहा है। केवल स्वीकार करने और मुस्कुराने से व्यक्ति अपनी शांतता बनाए रख सकता है। दूसरे लोग अपनी शांतता बनाए नहीं रख सकते क्योंकि न तो वे मुस्कुराते हैं, न ही स्वीकार करते हैं, बल्कि वे उलझ जाते हैं।

हर रात, सोने से पहले अगर आप बस एक मिनट के लिए सोचें, 'मैं किस विचार, घटना, परिस्थिति या व्यक्ति के साथ उलझा हुआ हूँ? और मैं इसे कैसे सुलझा सकता हूँ ताकि अपनी शांत, संयमित अवस्था प्राप्त कर सकूँ?' शांतता का तात्पर्य केवल यह सोचना नहीं है, 'ओह, मुझे हर समय शांत रहना है।' साथ ही हर स्थिति में सही काम को पहचानना और करना भी है ताकि आप उत्तेजित न हों। इसका परिणाम शांति की अवस्था है। एक बार आप शांत अवस्था प्राप्त कर लेते हैं तो आध्यात्मिक गुण विकसित होने लगेंगे।

इस छठे यम तक आप अपने मन से निपट रहे हैं, मन की स्थिति को सकारात्मक में बदलने की कोशिश कर रहे हैं। यह छह यमों का एक समूह है जो मन को सकारात्मक व्यवहार अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित करता है। आप मन:प्रसाद से शुरू करते हैं और शांतता के साथ समाप्त करते हैं, और इसके साथ जीवनशैली यम समाप्त हो जाते हैं।

– 25 जनवरी 2018, गंगा दर्शन

कर्म-संन्यास – संतुलन का मार्ग

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

मानव जीवन का उद्देश्य मात्र भौतिक शरीर का विकास नहीं, बल्कि उसके मन और चेतना का विकास होता है। मन के विकास की प्रक्रिया जटिल होती है। जैसे-जैसे विकास के चरण आगे बढ़ते हैं, मन में सन्निहित चेतना के उच्च आयाम अभिव्यक्त होने लगते हैं और व्यक्ति अधिकाधिक आध्यात्मिक होता जाता है।

आध्यात्मिकता बाहर से ओढ़ी जाने वाली अथवा दिखाने वाली कोई स्थूल वस्तु नहीं होती। यह हमारे मन और चेतना के विकास का परिणाम होती है। जीवन में हर क्षण मन और चेतना विकसित होते रहते हैं। जैसे-जैसे चेतना उच्चतर विकास के पथ पर बढ़ती है, हम अपने अस्तित्व के गहन अर्थ और उद्देश्य की खोज में संलग्न होते हैं। इस उच्च चेतना का सम्बन्ध आत्मा की अभिव्यक्ति से होता है।

पशु योनियों में जन्म का उद्देश्य मात्र शारीरिक विकास तथा शक्ति संचय होता है। इसीलिए पशु योनियों में आत्मरक्षा, खाना-पीना, सोना तथा वंशवृद्धि की सहजात प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं। ऐसा कभी सुनने में नहीं आता कि कोई कुत्ता, गाय अथवा बकरी बड़ी आध्यात्मिक थी अथवा सत्संग में जाती थी। परन्तु मानव जीवन में उपर्युक्त प्रवृत्तियों के साथ-साथ कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जो उसे पशु-जगत् से अलग करती हैं। ये विशेषताएँ उसका मन, चेतना, बुद्धि और आत्मा होती हैं। मनुष्य योनि का यह विशिष्ट आयाम ही उसे आत्म-साक्षात्कार के सर्वोच्च लक्ष्य की ओर प्रेरित करता है।

हर मानव मन में इच्छा, आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षा, घृणा, भय, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ इत्यादि निम्न वासनायें पाई जाती हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त उसमें कुछ उच्च विशेषतायें भी होती हैं, जो व्यक्ति के अपने विकास के अनुपात में होती हैं। इनका सम्बन्ध उसके सर्वोच्च मन के साथ रहता है। इनमें विवेक, वैराग्य, निःस्वार्थ भाव, एकाग्रता, करुणा आदि प्रमुख माने जाते हैं। जैसे-जैसे हमारी चेतना विकसित होती है, इनकी अभिव्यक्ति प्रभावशाली ढंग से होती है। हमारा आध्यात्मिक विकास चेतनात्मक विकास के साथ कदम-दर-कदम आगे बढ़ता जाता है।

जब आप एक हद तक निम्न वासनाओं तथा भावनाओं का अतिक्रमण कर लेते हैं, तब आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ होता है तथा मस्तिष्क के उच्च क्षेत्र प्रस्फुटित होने लगते हैं। आध्यात्मिकता तथा मानसिक विलक्षणतायें हर व्यक्ति में सन्निहित होती हैं, परन्तु या तो अज्ञानवश या उपेक्षा के कारण ये निष्क्रिय रहती हैं। यह सच है कि जब तक ये विशेषतायें हमारे व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग नहीं बन जातीं, हम पशु स्तर से बेहतर नहीं हो सकते। जब इन उच्च आयामों की अभिव्यक्ति होने लगती है तभी हम कह सकते हैं कि हमारा मानवीय चेतनात्मक विकास प्रारम्भ हो गया है।

यदि आप इस स्तर तक पहुँच गये हैं तथा यह अनुभव करते हैं कि इन क्षमताओं को उनके पूर्णता के बिन्दु तक विकसित किया जाये, तो इसके लिये यह आवश्यक है कि आपको उचित मार्गदर्शन मिले। आपको यह मालूम होना चाहिए कि यह मार्गदर्शन आपको कहाँ और किससे सुलभ हो सकता

है, अन्यथा आपके भटकने, भ्रमित अथवा असंतुलित होने की पूरी संभावना रहती है। जैसे-जैसे आपके उच्च मानसिक आयाम प्रस्फुटित होते हैं, आपके कर्म, वासनायें, महत्त्वाकांक्षायें आदि भी अभिव्यक्ति पाते हैं। आध्यात्मिकता और विलक्षण मानसिक क्षमतायें आपके व्यक्तित्व का अनिवार्य घटक हैं, आपको इनकी पूर्ति करनी ही पड़ेगी।

इसलिए व्यक्तित्व के आंतरिक एवं बाह्य पक्षों का सन्तुलित विकास होना बड़ा आवश्यक है। आप एक की कीमत पर दूसरे की अनदेखी नहीं कर सकते। इन दोनों के बीच स्वस्थ सामंजस्य तथा समस्वरता स्थापित करने की आवश्यकता है। इसलिए ऐसे लोगों के लिये कर्म संन्यास की व्यवस्था की गयी है जिनमें उच्च चेतना तो जाग्रत हो चुकी है, परन्तु किसी कारणवश उनकी गृहस्थाश्रम सम्बन्धी जिम्मेदारियाँ पूरी नहीं हो सकी हैं। कर्म संन्यास आपको अपने व्यक्तित्व के दोनों आयामों की अनुभूति प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है।

आपने बहुधा विद्वज्जनों को यह उपदेश देते सुना है कि नेक बनो, दयालु बनो, सबका भला करो, आदि। आप यह सब बनना चाहते हुए भी नहीं बन पाते, क्योंकि उपदेश तो हर कोई दे सकता है, मार्गदर्शन नहीं मिलता। ये सद्गुण तो आपके भीतर जन्मजात हैं। जैसे-जैसे व्यक्तित्व विकसित होता है, ये अपने आप प्रकट होते हैं। इसके विपरीत अध्यारोपित नियमानुसार अपने व्यक्तित्व के निषेधात्मक पक्ष को जबरदस्ती दबाकर इन्हें ओढ़ लेना कतई उचित नहीं होगा। अपने विवेक, बुद्धि तथा निर्णय की क्षमता के परिणामस्वरूप आप नेक तथा दयालु बनें, न कि दंड अथवा सामाजिक तिरस्कार के भय से।

मानसिक विकास तथा आध्यात्मिकता के प्रकटीकरण द्वारा ही आप सही अर्थों में नेक बन सकते हैं। यह विकास आपके व्यक्तित्व तथा जीवन का अभिन्न अंग हो तथा आपके प्रत्येक कार्यकलाप में झलके। ऐसा न हो कि जब आप जप, ध्यान अथवा प्रार्थना के लिये बैठें तो किसी अज्ञात भय के कारण मात्र कुछ समय के लिये ऐसा लगे कि आप सचमुच विकास की ऊँचाइयों पर पहुँच गये हैं। परन्तु वस्तुस्थिति यह होगी कि आप यह सोचकर भयभीत रहेंगे कि 'यदि मैंने ईश्वर को प्रसन्न न किया, उसके साथ समझौता नहीं किया, तो मैं विपत्ति में पड़ जाऊँगा। इसलिये स्तुति, चापलूसी, क्षमायाचना अथवा गिड़गिड़ाकर उसे अपने पक्ष में कर लें, अन्यथा मरणोपरांत जीवन घोर विपदापूर्ण होगा।'

यह समूचा दर्शन त्रुटिपूर्ण है। प्रार्थना अवश्य कीजिये, परन्तु वह आपके उच्च अस्तित्व का अंग होना चाहिये। ध्यान अवश्य कीजिये, परन्तु वह आपके तथा समग्र सृष्टि के बीच एकता और अटूट प्रेम की अभिव्यक्ति हो। केवल तभी आपकी प्रार्थना और ध्यान वास्तविक होंगे, अन्यथा नहीं। परन्तु ऐसा नहीं होता। आपका जीवन खण्डों में विभाजित रहता है। आप जीवन को सहज रूप से स्वतंत्रतापूर्वक प्रवाहित नहीं होने देते। अपने लिये अनेक बाधायें तथा वर्जनायें निर्मित कर लेते हैं। जीवन में आप धर्म और आध्यात्मिकता को पृथक् दृष्टिकोण से देखने लगते हैं, जबकि होना यह चाहिये कि जो उच्च जीवन आप बिता रहे हैं उसके परिणामस्वरूप धर्म और आध्यात्मिकता एक साथ पुष्पित हों।

इन्हीं बातों को दृष्टि में रखकर कर्म संन्यास का विधान किया गया है कि संसार में सक्रिय रूप से जीवनयापन करते हुए भी आप अपनी उच्च मानसिक क्षमताओं को विस्तृत एवं अभिव्यक्त कर सकें। आध्यात्मिकता जीवन में ही सीखने और प्रकट करने की वस्तु है, उसे आप पृथक् नहीं कर सकते। तभी जीवन के गुप्त रहस्य प्रकट होते हैं, अन्यथा उनका स्वरूप ऐसा होता है कि व्यक्ति के रोंगटे खड़े हो जायें।

श्रीमद्भगवद्गीता का विश्व-वाङ्मय में सर्वोच्च स्थान है। इसमें गीता के नायक श्रीकृष्ण अपने शिष्य अर्जुन को उच्च चेतना की जानकारी प्रदान करते हैं। दृश्य कुरुक्षेत्र के समरांगण का है। दोनों पक्षों के अनगिनत योद्धा, एक से एक मारक आयुध धारण कर समर के लिये तैयार खड़े हैं। इस बीच श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि अपनी सर्वोच्च चेतना के आधार पर ही व्यक्ति को कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये, भले ही उस कर्म का स्वरूप कुछ भी हो। युद्ध का मैदान भी उतना ही पवित्र होता है जितना मंदिर अथवा गिरजाघर। वे अर्जुन को मीठी झिड़की देते हुए कहते हैं कि जब व्यक्ति संपूर्ण विवेक, सन्तुलन एवं सही निर्णय के अनुसार कर्म करना सीख लेता है, तभी उसमें वास्तविक आध्यात्मिकता प्रकट होती है।

कभी क्षण भर के लिये भी ऐसा सोचने की भूल न करें कि जीवन को नकार कर, उसकी वास्तविकता से विमुख होकर आप आध्यात्मिक बन जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन उसके लिये कुरुक्षेत्र है। अब आपको यह स्वयं निर्धारित करना है कि जीवन को किस दिशा में गति प्रदान की जाये।

नियमितता की प्रासंगिकता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

शांतता के यम के साथ जो नियम आता है वह है नियमितता। क्या आप नियमित रहने के अपने प्रयास को बनाए रखने में सक्षम हैं? और नियमितता के क्या लाभ हैं?

विद्यार्थियों के लिए नियमितता

अगर आप स्कूल जाने वाले बच्चों को देखें तो परीक्षा का समय आने पर वे घबरा जाते हैं। साल भर उन्होंने अपनी पढ़ाई पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया और अब वे घंटों पढ़ाई करने लगते हैं, रात में कॉफी पीकर जागते रहते हैं।

आप सभी स्कूल से गुजरे हैं, परीक्षाओं के विभिन्न चरणों से गुजरे हैं, और आप अपने स्वयं के अनुभव को देख सकते हैं। परीक्षा के समय आपको किस तरह की स्थिति का सामना करना पड़ा? वह सहजता की स्थिति थी या संघर्ष की? क्या आपको देर रात तक अध्ययन करने की आवश्यकता थी, या आपने सामान्य रूप से अध्ययन किया?

अगर बच्चा हर दिन एक घंटा पढ़ाई के लिए लगाए तो परीक्षा के समय तनाव और दबाव नहीं होगा। हर दिन एक घंटे की निरंतर पढ़ाई बच्चे को शिक्षित करेगी, न कि शैक्षणिक वर्ष के अंत में केवल पास होने के लिए की जाने वाली रटंत पढ़ाई। उससे से कुछ भी शिक्षा नहीं मिलेगी। लेकिन अगर छात्र नियमित रूप से रोजाना एक घंटा पढ़ाई करें तो अंत में होने वाली परेशानी और चिंता से बचा जा सकेगा और फिर शिक्षा भी सार्थक होगी। यह उन्हें सुसंस्कृत, ज्ञानवान् और सजग बनाएगी। वे जो पढ़ेंगे उसे आत्मसात् करेंगे।

इसके विपरीत वह विद्यार्थी है जो रातभर जागता रहता है, ढेरों किताबें पढ़ता है, मुख्य बिंदुओं के नोट्स बनाते रहता है, पर वास्तव में कुछ नहीं समझता। ऐसे विद्यार्थी केवल अनुमान लगाते हैं कि उचित उत्तर क्या होगा, और परीक्षा देने के बाद भी उनके मन में यह सवाल रहता है कि मैं फेल होऊंगा या पास? चिंता बढ़ती जाती है। जिस भी गतिविधि में आप शामिल हैं, उसमें नियमित होने की प्रासंगिकता यही है कि भविष्य में संघर्ष कम हो। विद्यार्थी जीवन के दौरान नियमितता का यही मुख्य लाभ है।

युवाओं के लिए

जीवन का दूसरा चरण युवावस्था है। एक कॉलेज जाने वाले युवा व्यक्ति के जीवन में नियमितता की अवधारणा क्या होगी? ऐसे व्यक्तियों का स्वभाव, गुण और व्यक्तित्व कैसा है? युवाओं को सामाजिक क्रियाकलाप और खेलकूद पसंद होते हैं। ये उनके मुख्य आकर्षण हैं। लेकिन साथ ही उनकी अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाने और परिवार के साथ रहने की भी जिम्मेदारी होती है।

यह जीवन का ऐसा समय होता है जब कई विकल्प और दिशाएँ होती हैं, जिनमें व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है। ऐसे समय समझदारी, संयम, दिनचर्या और सही चीजों की प्राथमिकता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पढ़ाई को कितना समय देना है? इसे तय करें। सामाजिक मेलजोल को कितना समय देना है? इसे निर्धारित करें। खेलकूद को कितना समय देना है? इसे तय करें। अन्य गतिविधियों में या परिवार के साथ कितना समय बिताना है? इसे निश्चित करें। फिर उस दिनचर्या को बनाए रखें। यह दिनचर्या ही जीवन के कर्मों, दायित्वों, प्राथमिकताओं और समझ में संतुलन लाएगी।

युवा गृहस्थों के लिए

बीस या तीस साल पहले, पारिवारिक व्यक्ति सुबह उठते थे, परिवार के साथ नाश्ता करते थे, फिर काम पर जाने की तैयारी करते थे। वे दफ्तर पहुँचते थे, निर्धारित घंटों तक दफ्तर में पूरी तरह संलग्न रहते थे, फिर दफ्तर का काम बंद करके परिवार के साथ रहने घर लौट आते थे। वे दफ्तर को अपने साथ नहीं लाते थे और न ही अपने घर को दफ्तर ले जाते थे।

दफ्तर में जीवन नियमित था – इस समय से इस समय तक। दफ्तर के द्वार बंद हो जाने के बाद वे दफ्तर में नहीं रहते थे। वे परिवार के सदस्य बन जाते थे। वे परिवार के साथ बाहर घूमने जाते, सिनेमा देखते, खाना खाते, घर पर टीवी देखते, परिवारवालों के साथ कुछ बातचीत करते। यह बातचीत और परस्पर व्यवहार परिवार के सभी सदस्यों के लिए एक अलग समझ को जन्म देता। इससे हर एक सदस्य परिवार के मूल्यों से जुड़ता।

आज स्थिति अलग है। लोग रात दस बजे तक अपने ई-मेल का जवाब देते हैं, आधी रात को अपने मैसेज देखते हैं, सुबह एक बजे मैसेज भेजते हैं। गतिविधियों में कोई नियमितता या विनियमन नहीं है।

नियमितता का मतलब सिर्फ निरंतर प्रयास नहीं है, इसका मतलब गतिविधि का नियमन भी है। डिजिटल दुनिया में गतिविधि का कोई नियमन नहीं है। क्या आप शाम छह बजे से सुबह छह बजे तक अपना मोबाइल अलग रख सकते हैं? असंभव। जब भी फोन बजता है तो आप खुद से पूछते हैं, 'मुझे क्या मैसेज मिला है? कौन सा ई-मेल आया है?' और तुरंत उसे पढ़कर जवाब देते हैं। यह भले ही छोटी-सी बात है, फिर भी इसने व्यक्ति के जीवन से नियमित और निरंतर कार्रवाई की अवधारणा को निकाल दिया है।

मन भी ऐसा ही होते जा रहा है। यह इतना विक्षिप्त हो गया है कि अब दोस्ती की पहचान आमने-सामने की बातचीत से ज्यादा मोबाइल के इस्तेमाल से होती है। आप किससे बातचीत कर रहे हैं, यह अब महत्त्वपूर्ण नहीं है; बल्कि आप अपने मोबाइल के जरिए कैसे वार्तालाप कर रहे हैं, यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। पूरा मन डिजिटल दुनिया की रफ्तार का अनुसरण कर रहा है, जिस वजह से वह अपने कर्मों, भावनाओं, जरूरतों या जीवनशैली को नियंत्रित नहीं कर पा रहा। इसलिए गृहस्थ जीवन शुरू करने वाले युवा वयस्कों के जीवन में कर्मों के नियमन और नियमितता को एक साथ देखना होगा।

वयस्क व्यक्तियों के लिए

वयस्क लोगों के जीवन में नियमितता आदतों के रूप में आती है। आपका शरीर एक निश्चित समय पर भोजन करने के लिए अनुकूलित होता है। जब वह समय आता है तो आपका शरीर कहता है, 'मुझे भूख लगी है, मुझे भोजन की आवश्यकता है।' आप एक निश्चित समय पर सोने के आदी हैं। अगर वह समय बीत जाता है तो या तो आपको बहुत नींद आती है और

आप खड़े-खड़े भी सो जाते हैं या नींद चली जाती है और आप जागते रहते हैं। मुख्य बात यह है कि आपको इन आदतों, इन छोटी-छोटी स्थितियों को नियमित रूप से बनाए रखना होगा। आपको ऐसी आदतें भी विकसित करनी होंगी जो आपके स्वास्थ्य में सहायक हों और उन आदतों को बनाए रखना होगा।

सुबह उठते ही आप अपने दाँतों को साफ करते हैं। आप इसे हर दिन करते हैं क्योंकि आप इसे दाँतों के लिए अच्छा मानते हैं। इसी तरह, आपको अपनी दिनचर्या में कुछ व्यायाम भी शामिल करना चाहिए, लेकिन आप ऐसा नहीं करते क्योंकि इसमें समय लगता है। दाँतों का मंजन करने और नहाने से आपको लगता है, 'मैंने अपने शरीर के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है, यह तरोताजा और साफ-सुथरा हो गया है।' लेकिन अगर आप अपने शरीर के लिए बस इतना ही करते हैं, तो चालीस-पचास की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते आपको स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ होने लगती हैं। फिर आप अपने इलाज के लिए दवाओं का सहारा लेते हैं। चालीस साल तक आपने जो लापरवाही की है, उसकी भरपाई के लिए आपको ढेर सारी दवाएँ लेनी पड़ती हैं। इसलिए, आपको ऐसी आदतें विकसित करनी होंगी जो जीवनशैली को नियंत्रित कर सकें। इसमें खान-पान की आदतें भी शामिल हैं।

प्राचीन परंपराओं में हमेशा जीवन की सभी गतिविधियों में नियमन और एक दिनचर्या के पालन पर जोर दिया गया है। वैदिक जीवनशैली इसी सिद्धांत पर आधारित थी। आश्रम की जीवनशैली इसी पर आधारित है। अगर हर कोई अपनी मर्जी से, अपने समय पर रसोईघर या अपने भवन या अपने काम पर जाए, तो किस तरह का नियमन होगा, किस तरह की व्यवस्था और अनुशासन होगा? बिल्कुल नहीं। उस तरह का जीवन आश्रम के बाहर जिया जा सकता है, लेकिन आश्रम में आपको अनुशासन और व्यवस्था के भीतर रहना होगा। इसका उद्देश्य कार्यों को विनियमित करना है। लेकिन लोगों में उद्देश्य की कोई समझ नहीं होती, और अक्सर वे नियमों को अस्वीकार कर देते हैं।

विनियमन इतना आसान नहीं है, क्योंकि आपको अपनी अनियमितता का पता ही नहीं है। इसलिए आप नहीं जानते कि अपने कार्यों को कैसे विनियमित या नियंत्रित किया जाए। आप नहीं जानते कि उन्हें सकारात्मक और रचनात्मक कार्यों में कैसे बदला जाए।

संकल्प-शक्ति का उपयोग

यम-नियमों के संदर्भ में आपको एक शब्द याद रखना होगा – व्रत। आप इस शब्द को संकल्प, प्रतिज्ञा आदि जिस भी तरह से परिभाषित करें, पर इसे अपने जीवन में जरूर उतारें। जब आप व्रत रखते हैं, तो आप एक निश्चित अवधि के लिए एक विशिष्ट दिनचर्या का पालन करते हैं – 'मैं यह खाऊँगा और वह नहीं। मैं नमक नहीं खाऊँगा। मैं केवल फल खाऊँगा।' व्रत की अवधि के दौरान हर चीज की निगरानी रखी जाती है और उसका निरीक्षण किया जाता है, कुछ भी संयोग पर नहीं छोड़ा जाता। आप परोसे जाने वाले भोजन की भी जाँच करते हैं, वह सही चीज होनी चाहिए। जब आप व्रत का पालन करते हैं तो सब कुछ बिल्कुल सटीक होना चाहिए।

कुछ लोग संकल्प लेते हैं, 'मैं एक दिन धूम्रपान नहीं करूँगा', और यह एक शुरुआत है। जब वे एक दिन ऐसा करने में सक्षम हो जाते हैं, तो वे तय करते हैं, 'मैं दो दिन ऐसा नहीं करूँगा।' इससे गाड़ी थोड़ी और आगे बढ़ती है। जब वे दो दिन ऐसा करने में सक्षम हो जाते हैं तो कहते हैं, 'ठीक है, मैं तीन दिन धूम्रपान नहीं करूँगा।' हर बार वे एक दिन बढ़ाते हैं, इसलिए कोई संघर्ष नहीं होता। वे कदम-दर-कदम चलकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम हो जाते हैं।

कदम-दर-कदम निरंतर चलते रहना नियमितता के नाम से जाना जाता है। कर्मों में संतुलन भी नियमितता के नाम से जाना जाता है। नियमित होने का तात्पर्य अपने लक्ष्य को स्थापित और परिभाषित करने से है। एक बार लक्ष्य परिभाषित कर दिया जाए तो उसके समापन की ओर कदम-दर-कदम चलना नियमितता है।

पुरुषार्थों में संतुलन

वैदिक काल के अनुशासित जीवन से नियमितता का एक और पहलू दिखलाई देता है। उस समय का मूल सिद्धांत था, जीवन के चार पुरुषार्थों – अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष के बीच संतुलन खोजना। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के दौरान इन चारों के लिए काम करना पड़ता था। कुछ समय वे अर्थ के लिए काम करते जिसमें धन-सम्पदा कमाने का, अपनी जरूरत की चीजें प्राप्त करने का, परिवार की देखभाल करने का, बच्चों की शिक्षा का, घर की मरम्मत आदि का प्रयास होता।

फिर धर्म के लिए एक अवधि निर्धारित की गई। सबेरे जागने पर कुछ मिनटों के लिए धर्म के कुछ नियमों का पालन करो। स्नानादि के बाद घर के पूजा स्थल पर पाँच-दस मिनट तक धर्म के अन्य नियमों का पालन करो। भोजन से पहले, फिर से धर्म के कुछ नियमों का पालन करो। सोने से पहले धार्मिक नियमों का एक और समूह। इस तरह दिन के प्रत्येक चरण में वे निर्धारित धार्मिक नियमों और अनुष्ठानों का पालन करते थे। यही उनकी जीवनशैली थी।

आप अपने जीवन में भी ऐसा संतुलन विकसित कर सकते हैं। सुबह उठते ही तीन मंत्रों का जप करें – महामृत्युंजय मंत्र, गायत्री मंत्र और दुर्गाजी के बत्तीस नाम। यह दिन का पहला धार्मिक कर्म है। इससे एक सकारात्मक सम्बन्ध और जुड़ाव पैदा होता है। जिस तरह आप अपनी इंद्रियों के माध्यम से भौतिक संसार से जुड़ते हैं, उसी तरह आप सबेरे इन तीन मंत्रों के माध्यम से सकारात्मक संकल्पों, आकांक्षाओं और प्रकाश से जुड़ते हैं। स्नान करने के बाद, अपने पूजा स्थल पर जाइये, धूप-दीप जलाइये, प्रार्थना के साथ दिन की शुरुआत कीजिये। अखबार, टीवी या मोबाइल से दिन की बुरी खबरें देखने के बजाय, दिन की शुरुआत सकारात्मक तरीके से करें। धर्म के ये छोटे-छोटे कार्य आपको कुछ मिनटों के लिए आपकी सामान्य मानसिकता और गतिविधि से अलग कर देंगे। जब आप भोजन के लिए बैठें, तो इस श्लोक के साथ भोजन के प्रति अपना आभार व्यक्त करें –

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥4.24॥

रात को सोने से पहले अपने मन में दिनभर जमा हुए कचरे को साफ कर लें, अपना जप करें। ये सब आपके धर्म सम्बन्धी पुरुषार्थ हैं। दैनिक जीवन में दान-कार्यों को धर्म कहा जाता है। एक भलामानस होना धर्म कहलाता है। अगर कोई बीमार है, तो उसे स्वस्थ होने में मदद करें, उसे दवा दें। अगर कोई भूखा है, तो उसे भोजन खिलाएँ। अगर कोई नंगा है, तो उसे कपड़े दें। ऐसा हर छोटा-मोटा काम धर्म माना जाता है, जिसे आप अर्थ और काम के साथ जोड़ते हैं।

अर्थ, काम और धर्म के पुरुषार्थों को पूरा करने के साथ-साथ शांति, ज्ञान और प्रकाश की भी कामना करें। दूसरों की मदद करने के साथ-साथ, अपने मोक्ष की भी कामना करें। उन साधनों का उपयोग करें जो आपके स्वनिर्मित बंधनों से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

योग के सिवा कोई चारा नहीं

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मैं जहाँ-जहाँ योग के सम्बन्ध में बुलाया जाता हूँ, मुझे बहुत प्रसन्नता होती है कि मैं अपने देश की संस्कृति के लिये कुछ कर रहा हूँ। जैसे-जैसे मैं दुनिया की ओर नजर घुमाता हूँ और दुनिया की संस्कृति को देखता हूँ तो मेरा विश्वास पक्का होता जाता है कि योग मानव मात्र की संस्कृति है और बहुत ही शीघ्र वह समय आयेगा कि योग मनुष्य के जीवन का नियंत्रण करेगा। इसी आशा और विश्वास को लेकर मुझे देशभर में और संसार के सभी राष्ट्रों में जाने का मौका मिला है। मैं आपको बतला देना चाहता हूँ कि जिस योग की बात आपके सामने करता हूँ, वह कोई धर्म नहीं और न धर्म विरोधी बात है, बल्कि यह एक विज्ञान है, इससे प्राप्त परिणामों को विज्ञान के तराजू पर तौला जा रहा है। यह योग दुनिया के हताश, निराश और दु:खी लोगों के लिये एक आशा का संदेश लेकर आया है।

मैंने बारह साल तक परिव्राजक जीवन व्यतीत किया, गाँवों में घूमकर भिक्षा मांगी है, सड़क के किनारे भी सोया हूँ और कई बार लोगों के दरवाजे से लौटा भी हूँ। आज मैं पूर्ण विश्वास एवं साहस के साथ कह सकता हूँ कि यदि संसार की मानसिक प्रवृत्ति को कोई संस्कृति या विचारधारा बदल सकती है तो वह योग ही है।

योग की उपयोगिता

मैंने कई बार पश्चिम में चर्च के मंच पर खड़े होकर कहा है, 'कैसा है तुम्हारा धर्म, जो आज तुम्हारे बच्चों को एल.एस.डी. के नशे से वापस नहीं कर सकता? कहाँ है तुम्हारे धर्म की शक्ति जो तुम्हारे बच्चों को निरंकुश होने से रोक नहीं सकती?' कोई भी धर्म अगर मानव समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकता है तो वह फेल हो गया है। कोई भी दर्शन चाहे वह आध्यात्मिक दर्शन ही क्यों न हो, आर्थिक या राजनैतिक क्यों न हो, अगर वह मनुष्य की बदलती और बिगड़ती मानसिक प्रवृत्तियों को, समाज के टूटते ढाँचे को बदल नहीं सकता, तो उसे बदलना होगा। मैंने उन देशों में कहा कि योग ने हजारों-लाखों बच्चों को पागलखाने से मुक्ति दिलाई है। डेनमार्क के पागलखाने से तीन हजार पागल बच्चों को बहिर्गत किया गया, हमारे पास प्रमाणित आँकड़े हैं। इन पागलखानों में इन लोगों ने हठयोग की क्रियायें की हैं और 6 महीने में ही ये लोग पागलखाने के बाहर आ गये हैं। अब वे लोग अपनी कमाई कर अपने परिवार की जिन्दगी चला रहे हैं। योग मानवता को रास्ता न बता सका हो, ऐसा एक भी उदाहरण आप मुझे दे दीजिये। हमने योग का अभ्यास नहीं किया, इसलिये हम दु:खी हैं। हमारे पूर्वजों ने अभ्यास नहीं किया, इसलिये वे गिर गये, मगर आज हमने कसम खाई है, हम सीखेंगे और सिखायेंगे, करेंगे और करायेंगे। हमारी आने वाली सभ्यता के पास दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मैं आप लोगों को आँकड़ों से साबित करके दिखा सकता हूँ कि जिस-जिस जगह योग आया है, वह चाहे एशिया हा या अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया हो या फ्रान्स, डेनमार्क हो या इंग्लैण्ड, अफ्रीका हो या हिन्दुस्तान, उसने अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया है। फिर भी आज हमारे देश का आदमी लगन के साथ योग को नहीं ले रहा है, ठहरकर लेता है, सोच करके लेता है, डगमगा करके लेता है, अविश्वास के साथ लेता है। कहता है, योग को समझकर करो, नहीं तो नुकसान हो जायेगा। अरे! जिस धड़ल्ले के साथ तुम कॉर्टिसोन या एनासिन लेते हो, क्या तुम उस धड़ल्ले के साथ योग को नहीं ले सकते हो?

मनुष्य की बीमारियाँ, उसके रोग कहाँ से शुरू होते हैं? मनुष्य को अपने जीवन की गहराइयों में जाना होगा और इसके मूल को पहचानना होगा, जिसका रास्ता योग के पास है। स्वामी सत्यानन्द या स्वामी शिवानन्द इसके आविष्कारक नहीं, हमने तो इसको मात्र पुनर्जीवित किया है। यह अनादि

विद्या है और इस विद्या को आपके देश के ऋषि-मुनियों ने जाना था, क्योंकि मनुष्य दु:खी है, रोग से पीड़ित है, अपराध और आसक्ति से पीड़ित है, मोह से पीड़ित है। यही पीड़ायें उसमें रोग पैदा करती हैं, अम्ल, पित्त, दमा, कफ पैदा करती हैं। यह हमारे ऋषि-मुनि अच्छी तरह से जानते थे।

हमारी सभ्यता का आधार जीवन की स्वाभाविकता है। इसी को लेकर हम योग आन्दोलन को दुनिया में हर जगह फैलाते जा रहे हैं। कई देशों में मैं गया हूँ जहाँ इसका विरोध हुआ है। वहाँ लोग डरते थे, पर आज ऐसी बात नहीं। आप लोगों को सुनकर खुशी होगी और सोचने का मौका मिलेगा कि अब जेलों और पागलखानों में भी योग सिखाने की व्यवस्था हो गई है। अब तो वहाँ के मनस्वी, मनोवैज्ञानिक और बुद्धिजीवी बराबर सामने बैठकर देख रहे हैं कि आसन-प्राणायाम करने से, मन्त्रों का जप करने से हमारे मस्तिष्क में परिवर्तन होता है, हमारी अल्फा तरंगें बढ़ती हैं, हमारे एड्रिनल हॉर्मोन्स संतुलित होते हैं। जेलों में उन्होंने कैदी लोगों के मस्तिष्क के आँकड़े लिये, उसके बाद उनको पता चला है कि अनुकूल परिवर्तन हो रहा है।

अब इससे बढ़कर आप समाज को क्या दे सकते हैं? मैं पूछता हूँ कि क्या इन्सान अपराध वृत्ति को पूर्णतया विनष्ट कर सकता है? क्या इन्सान मन के असंतुलन को जीत सकता है? आज इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने सत्ता के बल पर अपराधों को नहीं जीता। इन्सान बदलना नहीं चाहता है, वह मानता ही नहीं कि उसे बदलना है। केवल एक चीज इन्सान को बदल सकती है, वह है योग। इसके द्वारा आप अपने का बदल सकते हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ-जहाँ कैदी हैं, जहाँ-जहाँ दु:खी लोग हैं, वहाँ पर जब हठयोग तथा ध्यान जैसे योग के अभ्यास कराये जाते हैं तो मालूम पड़ता है कि उनके जीवन में, उनके मन में, उनके विचारों में परिवर्तन हो रहे हैं। उनके अवचेतन मन में होने वाले परिवर्तनों को देखकर एक बात कह सकते हैं कि इन्सान अगर अपराधों को विनष्ट नहीं कर सकता तो अपराधों को कम अवश्य कर सकता है।

हठयोग द्वारा मानसिक और प्राणिक शक्ति का संतुलन

आज समाज-शास्त्रियों एवं विचारकों को मैं एक विषय दे रहा हूँ। क्या चीज है जो मनुष्य को साधु बनाती है? क्या चीज है जिससे व्यक्ति अपराधी बनते हैं? हठयोग साफ-साफ कहता है कि प्राणशक्ति और मन:शक्ति के बीच में असन्तुलन होता है, तभी मनुष्य या तो अतिसक्रिय बनता है या फिर वह

निष्क्रिय बन जाता है। यह मन:शक्ति, यह , जिसको योगशास्त्र में इड़ा और पिंगला कहा गया है, इनके बीच जब तक सामंजस्य, संतुलन नहीं होता, मनुष्य उग्र बनता है या पागल। हठयोग में स्पष्ट कहा है एक चन्द्रमा है जो मानसिक शरीर है और एक सूर्य है जो भौतिक शरीर है। मन और प्राण, यही दोनों मनुष्य के जीवन को नियंत्रित करने वाली शक्तियाँ हैं। इसी इड़ा व पिंगला, सूर्य व चन्द्र, गंगा और यमुना, प्राण और मन को अगर आप संतुलित रख सकते हैं तो आप जीवन में सुखी बन सकते हैं, सफल बन सकते हैं, क्योंकि जब प्राणशक्ति अधिक हो जाती है और मानसिक शक्ति उसे नियंत्रित नहीं कर सकती है तब आदमी अति क्रियाशील बनता है, उग्र हो जाता है, अनुशासनहीन बन जाता है। उसके पास प्राणशक्ति है, पर मन का संतुलन नहीं है। मन की शक्ति के असंतुलन से वह मानसिक रोगों से पीड़ित हो जाता है। निराशा, विषाद, चिन्ता और असंतुलित व्यक्तित्व इसी गिनती में आते हैं, ये सभी मन की बीमारियाँ हैं। हठयोग इन्हें संतुलित करने को कहता है।

योग का कहना है कि शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ बहती हैं। जिस प्रकार बिजली की निगेटिव और पॉज़िटिव लाइनें हजारों तारों से हजारों घरों में जाती हैं, उसी तरह इड़ा और पिंगला से ये दोनों शक्तियाँ बहत्तर हजार नाड़ियों के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित होती हैं। इन बहत्तर हजार नाड़ियाँ में दस नाड़ियाँ प्रमुख हैं और इन दस नाड़ियों को नियंत्रित करने वाली तीन नाड़ियाँ मुख्य होती हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। सारा योगशास्त्र इन तीन नाड़ियों पर कायम है। कुण्डलिनी योग और हठयोग का आधार यही तीन नाड़ियाँ हैं। हम जो भी करते हैं, ध्यान करते हैं, आसन करते हैं, प्राणायाम करते हैं, ये सब इन तीन नाड़ियों से सम्बन्धित हैं। अगर इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना पर व्यक्ति का नियंत्रण है तो सारे जीवन पर मनुष्य का नियंत्रण रहेगा। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को ही योग शास्त्र में गंगा, यमुना और सरस्वती के नाम से जाना गया है। इस बात को अच्छी तरह समझना होगा। हमारा यह योगशास्त्र न तो कोई धर्म है, न कोई छोटा-मोटा व्यायाम ही।

योग का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

दुर्भाग्यवश हमारे देश के लोगों के दिमाग में एक बात बैठ गई है कि योग बुढ़ापे में करेंगे। परन्तु जितनी भी भावनात्मक समस्यायें हैं, उन्नीस से पचीस वर्ष की उम्र में होती हैं। जितना आक्रोश और हिंसात्मक भाव है, सोलह से

बीस वर्ष में होता है। वह बूढ़ा आदमी, जिसका सारा रस निचोड़ा जा चुका है, वह बेचारा क्या योग करेगा?

योग उन लोगों को करना है जिनको समस्यायें हैं। योग उनके लिये है जो रोग से पीड़ित हैं। योग परफैक्ट लोगों के लिये नहीं, योग रिटायर्ड लोगों के लिये नहीं, बल्कि टायर्ड लोगों के लिये है, जो थक चुके हैं, जिनके मन में उलझनें होती हैं, समस्याएँ होती हैं। मुझे तो उस उम्र की याद है, आपको याद आती है या नहीं, वह आप जानें। परन्तु मुझे याद है उस समय किसी प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता है, मिलता भी है तो गलत ही मिलता है और यह समझ में नही आता कि गलत है या सही। ऐसी अवस्था में बच्चे भटक जाते हैं। आप दोष देते हैं आर्थिक व्यवस्था को, मगर आप अपने बच्चे को तथा उसकी उलझनों और उसकी विकृतियों को नहीं देखते। उसके मन में जो मकड़ी का जाल पैदा हो रहा है, उस जाल को निकालने के लिये, सुलझाने के लिये कभी कोई प्रयत्न किया जाता है क्या? उसके लिये कोई उपाय सोचा है क्या? आप लोग एक चीज जानते हैं, यह बच्चा अच्छा है, वह बच्चा बुरा है। आप लोग इसके अलावा कुछ नहीं जानते। आप जब उसके मन के बारे में कुछ नहीं जानते तो कैसे उसके मन को सुधारेंगे?

आप बोलेंगे, 'बेटा सच बोलो, सच बोलो' और बेटा झूठ बोलता है। वह बेटा जानबूझकर झूठ नहीं बोलता, उसके मस्तिष्क में इतनी उलझन है

कि वह निर्णय नहीं ले सकता कि क्या बोले। इसलिए वह जो कुछ बोलता है, वह झूठ ही होता है। मनुष्य का मन उस हिमखण्ड की तरह बहुत गहरा है जिसका थोड़ा-सा हिस्सा समुद्र के ऊपर तथा अधिकांश हिस्सा समुद्र के अन्दर होता है। आप जानते हैं कि विचार, भावना, वासना तथा कल्पना, ये सब मन नहीं हैं। मन सजगता और चेतना है, पहले इसका विश्लेषण करो। तब जाकर आप अपने बच्चों का विश्लेषण कर सकोगे, उन्हें समझ सकोगे।

इसलिये यह जरूरी हो जाता है कि सबको योग सीखना है। यह कहने से नहीं चलेगा कि हम बुढ़ापे में सीखेंगे। आज से आप लोग यह कहना छोड़ दीजिये कि 'छोड़ो भाई योग को, अभी तो मौज के दिन हैं, मौज करो।' यह प्रवृत्ति बड़ी अवैज्ञानिक है, घातक है। आज योग एक विज्ञान के रूप में हमारे सामने आ रहा है जो मनुष्य की वासनाओं और गलत धारणाओं को, मनुष्य के अन्दर जो जाल पड़ गये हैं, जो भ्रम पैदा हो गये हैं, जो दोष पैदा हो गये हैं उनको दूर कर सकता है।

इसका एक उदाहरण सुन लीजिये। हमारे आश्रम में इंग्लैण्ड से एक स्वामी आया। वह इन्जीनियर था। उसकी एक बीमारी थी, डीप डिप्रेशन यानि गहन विषाद। वह अच्छा बुद्धिजीवी था, मगर सुबह आठ बज से लेकर शाम पाँच बजे तक उसे न तो सोने का मन करता, न बैठने का, न उठने का, न बोलने का और न चुप रहने का। उसे उठने का मन करता तो बैठ जाता, बैठने का मन करता तो खड़ा हो जाता। मेरे से बात करने के विचार से आता, परन्तु बिना कुछ बात किये चला जाता था। मैं उससे कहता, 'अरे! क्या चाहते हो, बोलो!' तो बोलता, 'पता नहीं क्या हो गया?' शाम ढलते-ढलते ठीक हो जाता था। बिल्कुल सामान्य, जैसे हम या आप हैं।

एक दिन बड़ी विचित्र बात हुई। हमारे आश्रम के सामने एक सूअर घूम रहा था, टट्टी खा रहा था। एक अंग्रेज के लिए किसी को टट्टी खाते देखना बड़ी विचित्र बात थी। उसे देखते ही उसके दिमाग में कोई चीज प्रवेश कर गयी और तुरन्त उसे एक बात याद आ गयी। बचपन में जब वह 8-10 वर्ष का था तो मछली पकड़ने जाया करता था। मछली पकड़ने के लिये वह डिब्बे में इल्ली बन्द करके रखता था। एक बार वह कहीं बाहर चला गया था। एक हफ्ते बाद जब वह लौटा तो मछली पकड़ने की फिर इच्छा हुई। सब सामान एक झोले में रखा और जब उसने डिबिया खोली तो छोटे-छोटे कीड़े एकदम उसके मुँह में आ घुसे, क्योंकि इल्ली के तो पंख निकल आये थे। 8 साल के

बच्चे के सामने बीस-तीस छोटे-छोटे कीड़े भनभना रहे थे और यह घटना उसके अवचेतन मन पर ऐसा असर डाल गयी जिसे साधारण मनुष्य तो क्या, मनोवैज्ञानिक भी समझ नहीं पाये। वह सोचने लगा, 'अरे, यह क्या हुआ, जरा-सा डिब्बा खोला और इतने कीड़े उड़ने लगे? इसमें क्या है?' उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। यह जरूरी नहीं कि कोई घटना दर्दनाक, भयानक या दु:खदायी ही हो, परन्तु साधारण-से-साधारण घटना का असर भी मनुष्य की चेतना के भीतरी सतह पर पड़े बिना नहीं रह सकता।

एक मजबूत दिमाग वाला अंग्रेज वैज्ञानिक, जो पूरी दुनिया घूमा था, एक्यूपंक्चर वगैरह किया था, उसे आठ साल की उम्र में घटी एक छोटी-सी घटना, जो खतरनाक नहीं, जिसका कोई खास मूल्य नहीं, गहन विषाद में ले गई। आपके, हमारे, सबके जीवन में हजारों छोटी-बड़ी घटनायें घटती रहती हैं, तो संभव है आपके रोगों का कारण किसी ऐसी ही घटना के मूल में छिपा हो। इसे वैज्ञानिकों को देखना होगा। उस दिन उस व्यक्ति ने जो सूअर वाली घटना देखी, उससे उसकी वर्षों की परेशानी समाप्त हो गई। हमने उससे पूछा, 'क्या हुआ?' तो वह बोला, 'सब कीड़ों के साथ उड़ गया।'

मैं अपने जीवन की एक घटना के बारे में भी बता सकता हूँ। बचपन में मुझे शेर के शिकार की धुन थी। रात के बारह बजे तक मैं शेर के शिकार के लिये घूमता रहता था। लेकिन जैसे-जैसे शाम होती थी, मुझे ऐसा अनुभव होता था कि मुझे कोई दबा रहा है। संन्यास लेने के बाद भी लगता रहा। न मैं साँप से डरता हूँ, न भूत-प्रेत से, मगर अंधेरा होने पर एक अजीब भय की यह स्थिति बनी रही। एक दिन की बात है, मैंने एक सड़ा हुआ अण्डा देखा और वह मेरे पैर से कुचला गया। साथ ही मेरे मन में एक अजीब घृणा का सा भाव आया और उसी रात मुझे एक स्वप्न आया। उस स्वप्न से मेरा जीवन बदल गया, मैं एक दूसरा आदमी बन गया। स्वप्न में मैंने देखा कि मैं एक बहुत छोटा बच्चा हूँ, तीन या चार साल का, मेरे माता-पिता एक नदी पर पिकनिक के लिये ले गये हैं। मेरे पिता ने स्वयं स्नान किया और फिर मुझे भी पानी में डुबकी लगा दी। जब तीन-चार साल के बच्चे को डुबा देते हो तो उसके सामने एक अन्धकार फैल जाता है, थोड़ी देर के लिये आकस्मिक भय उत्पन्न हो जाता है, वही उसके दिमाग पर असर डाल देता है। यह एक बहुत साधारण घटना थी, पर वह घटना थी अंधकार से भय की, जो मेरे जीवन पर छाप छोड़ गयी। मुझे लगता था कि कोई मुझे दबा रहा है, और यह भय भी बाद की उम्र से शुरू हुआ।

क्या आप लोगों का भय, मानसिक बीमारियाँ, शारीरिक बीमारियाँ, मन का जंजाल, यह सब आपके जीवन की घटनाएँ नहीं हैं? क्या आप लोगों ने उसे खोलने की कोशिश की है? इसे खोलने का तरीका ध्यान योग है। ध्यान करने वाले लोगों! ध्यान दो मेरी बातों पर। ध्यान करते समय मन जितना भागे, भागने दो। जितना अच्छा ध्यान होगा उतना ज्यादा अवचेतन मन ऊपर आता जायेगा। जितना ही ज्यादा तुम्हारा सूक्ष्म शरीर व्यापक होगा उतना ही अच्छा होगा, क्योंकि उसी में तुम्हारे बचपन की घटनायें हैं। सारे-के-सारे अनुभव वहाँ रखे गये हैं। जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घटना एक फोटो की तरह होती है। आप जीवन से भाग नहीं सकते, चित्रगुप्त के लेख से बच नहीं सकते। अनुभव रोग का रूप लेकर आता है, माता-पिता का गलत व्यवहार रोग लेकर आता है। मनुष्य की शारीरिक बीमारियों, व्यवहार से प्राप्त बीमारियों को ठीक करने के लिये अन्दर खोजो। अन्दर जाने का मतलब होता है योग करो।

योग महान् संतों, त्यागियों या मुनियों के लिये नहीं, बल्कि उनके लिये है जो दु:खी हैं। ध्यान योग, मन्त्र योग, पद्मासन, सिद्धासन या प्रणवोच्चारण

का अभ्यास आपके अन्दर छिपे हुये कर्मों के बीज-समुदाय को ऊपर लायेगा। मैं एक नहीं, हजार उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूँ। जैसे-जैसे अवचेतन मन व्यापक होगा, ये संस्कार बहिर्गत होंगे, व्यक्तित्व प्रस्फुटित होगा।

योग – एक सार्वभौमिक संस्कृति

स्वास्थ्य के लिए केवल वायरस या बैक्टीरिया को ही मत गिनो, मन और कर्म को भी साथ लेकर चलो। मन और कर्म के बिना तुम्हारा विज्ञान आधा है। मेरा आपसे एक निवेदन है। जब एक विदेशी संस्कृति हमारी बात सुनने को उत्सुक है तब तो इस योग के विषय में, जो आप ही की विरासत है, आपको अच्छी तरह सोचना चाहिए और उसे व्यवस्थाबद्ध करना चाहिए। योग को इतना व्यवस्थित करो जितना बाहर के देश कर रहे हैं। इसको आगे बढ़ाओ। मैं इसे धर्म के रूप में आगे नहीं बढ़ाना चाहता, बल्कि इसे विज्ञान, संस्कृति एवं कला के रूप में रखना और विकसित करना है। आपके पास जो कुछ भी सुविधाएँ हैं और कल्पनायें हैं, उनसे योग के कार्य को आगे बढ़ाओ। विश्व में योग को आगे बढ़ाने में 1964 से जो भी कार्य किया गया उससे आज बहुत फर्क हो गया है। मैं अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द जी का आभारी हूँ। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा था, 'स्वामी सत्यानन्द! मैं तो ऋषिकेश से बाहर नहीं जा सका, तुम बाहर जाओ और शेर की तरह दहाड़कर कह दो – धर्म, योग के कंट्रोल में रहेगा।'

बिहार योग विद्यालय एक छोटी-सी कुटिया है, पर वही कुटिया आप लोगों के योग का बीज है। मध्यप्रदेश में मेरे हजारों भक्त और शिष्य हैं, मगर मैं बिहार गया हूँ, क्योंकि मुझे बिहार में विश्वास है। वहाँ का आदमी जिस चीज को पकड़ लेगा, मरने के बाद भी उसे करेगा। भगवान बुद्ध की बात देखो, उनका काम मरने के बाद हुआ। भगवान महावीर को देखो, उनके मरने के बाद जैन धर्म फैला। वह धरती मजबूत है, इसीलिये मैं वहाँ गया हूँ। हमने वहाँ एक दीप जलाया है स्वामी शिवानन्द जी की स्मृति में। एक बार उन्होंने हमसे कहा था, 'यह दीपक सात समुन्दर पार धरती में जाना चाहिये।' आज राष्ट्रों में असुरक्षा है, अविश्वास है, भय है। उनके नागरिक भावनात्मक समस्याओं से, न्यूरोसिस से, सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित हैं। योग प्रत्येक व्यक्ति को मानसिक समस्याओं से बचने में मदद कर सकता है और राष्ट्रों को बचा सकता है। इस योग में अपार शक्ति है।

प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आदिगुरु शंकराचार्य द्वारा प्रणीत योग तारावली ग्रंथ का मुख्य विषय है प्राण, तथा मन की जागृति के पश्चात् ध्यान की अवस्था में नाद का अनुभव। जब प्राणों की चर्चा होती है तो हठयोग प्रधान होता है, और जब मन की चर्चा होती है तो राजयोग प्रधान होता है। सामान्य रूप से हमारे देश तथा विश्व में जो भी योग शिक्षक हैं, वे इस बात को समझ नहीं पाते हैं। बात करते हैं पातंजल योग दर्शन के चित्तवृत्तिनिरोध की, और सिखाते हैं आसन! इन दोनों का संयोग नहीं होता, क्योंकि हठयोग की भूमिका अलग है, और राजयोग की भूमिका अलग। राजयोग की जब बात करें, तो चित्तवृत्तिनिरोध प्रासंगिक है, लेकिन जब हठयोग की बात करते हैं तो प्राणों का उत्थान प्रासंगिक रहता है। इसीलिये आदिगुरु शंकराचार्य भी सबसे पहले हठयोग को माध्यम बनाकर नाद-समाधि या प्रणव-समाधि की चर्चा करते हैं।

हठयोग का क्रम

वे कहते हैं कि सबसे पहले शरीर विकारमुक्त होना चाहिये, क्योंकि जब तक हमारे शरीर के भीतर विकार हैं, तब तक न प्राण जग पायेंगे, न मन स्थिर हो पायेगा। जब प्राण ही नहीं जग रहे हैं और मन स्थिर ही नहीं हो रहा है, तब फिर ध्यान जैसी उच्च अवस्थाओं के बारे में सोचो मत। सबसे पहले शारीरिक शुद्धि की आवश्यकता है जिसके लिये हठयोग में षट्कर्मों का उल्लेख किया जाता है। नेति, धौति, बस्ती – शारीरिक शुद्धि के लिये ये तीन प्रधान हैं, और इनके द्वारा शरीर के तीन दोषों – कफ़, वात और पित्त को व्यवस्थित एवं संतुलित किया जाता है। तब इनके द्वारा उत्पन्न विकारों से हम मुक्त हो पाते हैं, जो रोगों के कारण बनते हैं। इसलिए शरीर-शुद्धि अथवा षट्कर्म का अभ्यास प्राथमिक है।

इसके बाद आदिगुरु शंकराचार्य आसनों की चर्चा नहीं करते हैं, वे सीधे हठयोग के तीसरे अंग पर आते हैं – प्राणायाम। प्राणायाम के बारे में वे कहते हैं कि इसके द्वारा ही हम पहले अपनी प्राण-वाहिनी नाड़ियों की शुद्धि कर सकते हैं। प्राणायाम में पूरक, रेचक और कुंभक अर्थात् श्वास लेना, श्वास

छोड़ना और श्वास को रोकना शामिल हैं। श्वास के द्वारा ही हम अपने शरीर के भीतर प्राणों को अनुभव कर सकते हैं, लेकिन यह भी याद रहे कि श्वास एक स्थूल प्रक्रिया है। जब हम स्थूल श्वास पर नियंत्रण प्राप्त कर लेते हैं, तब श्वास की सूक्ष्म प्रक्रिया का आभास होने लगता है और यही सूक्ष्म प्रक्रिया है प्राण।

हमारे गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानन्द जी कहते थे कि अगर शरीर को प्रोटीन की आवश्यकता है, तो बहुत-से लोग अंडा या बादाम खाते हैं क्योंकि इनमें प्रोटीन अधिक मात्रा में पायी जाती है। इसी प्रकार जब हम अपने शरीर में प्राणों को बढ़ाना चाहते हैं तो श्वास को माध्यम बनाया जाता है और इसे नियंत्रित किया जाता है, लेने और छोड़ने की क्षमता को बड़ाया जाता है। अभी आप जो श्वास ले रहे हैं उसमें संभवत: आप दो या तीन सेकेंड के लिये श्वास लेते हो और दो-तीन सेकंड के लिये श्वास छोड़ते हो। यह सामान्य श्वास है, जिसके माध्यम से प्राप्त प्राणिक ऊर्जा से ही हम अपने सभी शारीरिक कार्यों को संपन्न कर पाते हैं। चलना, दौड़ना, बात करना, भोजन को पचाना – ये सब कार्य इस छोटी-सी श्वास के द्वारा ही संपन्न होते हैं, लेकिन जब हम श्वास को लंबा करते हैं तो हमारे शरीर में प्राण शक्ति की भी वृद्धि होती है। इसीलिये प्राणायाम का सबसे पहला प्रयोजन अपनी श्वासों को लंबा करना होता है। इतना लंबा कि एक मिनट में तुम एक ही बार श्वास लो। श्वास-सिद्धि में इसका संकेत दिया गया है। यहाँ मैं प्राणायाम-सिद्धि नहीं, श्वास-सिद्धि शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। श्वास-सिद्धि कब होती है? जब हम चौबीस मात्रा, मतलब चौबीस सेकेंड तक श्वास अंदर ले सकते हैं, उतने ही अनुपात में श्वास को रोक सकते हैं, उतने ही अनुपात में श्वास को छोड़ सकते हैं, और उतने ही अनुपात में हम श्वास को बाहर भी रोक सकते हैं। यह प्रारंभिक अनुपात है, जिससे हम अपने फेफड़ों को लंबी, गहरी श्वास लेने, छोड़ने और रोकने के लिये तैयार करते हैं।

प्राणायाम की सिद्धि तब होती है, जब हम एक गायत्री मंत्र तक श्वास अंदर लेते हैं, चार गायत्री मंत्र तक श्वास को भीतर रोकते हैं, दो गायत्री मंत्र तक हम श्वास छोड़ते हैं और दो गायत्री मंत्र तक श्वास को बाहर रोकते हैं। जब 1-4-2-2 के इस अनुपात में हमारी श्वास सहज हो जाती है, तब जाकर प्राणायाम सिद्ध होने लगता है। तब जाकर नाड़ी शुद्धि होती है, इड़ा और पिंगला नाड़ियों में संतुलन आता है तथा सुषुम्ना नाड़ी की जागृति होती है। सुषुम्ना की जागृति के पश्चात् फिर कुण्डलिनी शक्ति का जागरण संभव हो पाता है, जैसा संकेत आदिगुरु शंकराचार्य ने योग तारावली में दिया है। प्राणायाम को इस प्रकार

सिद्ध करके हम हठयोग के चौथे आयाम में प्रवेश करते हैं, जो मुद्राओं और बंधों का अभ्यास है।

मुद्रा और बन्ध

मुद्रा तथा बंध प्राणों के व्यवहार, गति और उत्थान को व्यवस्थित करते हैं। योग तारावली के पाँचवे श्लोक में आदिगुरु शंकराचार्य बन्धों की चर्चा करते हैं –

जालन्धरौड्ड्यानकमूलबन्धान् जल्पन्ति कण्ठोदरपायुमूले।
बन्धत्रयेऽस्मिन्परिचीयमाने बन्धः कुतो दारुणकालपाशैः ॥5॥

जालन्धर, ओड्ड्यान और मूल – ये तीन बन्ध हैं जिनके अभ्यास से हम शरीर के भीतर ऊर्जा के बन्धनों को मुक्त करते हैं, ऊर्जा का स्वतंत्र करते हैं। जब ऊर्जा स्वतंत्र हो जाती है, तब फिर काल भी उस साधक को प्रभावित नहीं करता।

यहाँ पर स्पष्ट है कि उच्च अवस्था को प्राप्त करने के लिये आदिगुरु ने पहले हठयोग को माध्यम बनाया है और हठयोग के विविध अभ्यासों को बतला रहे हैं। इस श्लोक में जिन तीन बन्धों की चर्चा है, वास्तव में वे हमारे शरीर के भीतर तीन ग्रंथियों – ब्रह्म ग्रंथि, विष्णु ग्रंथि और रुद्र ग्रंथि को खोलने में सहायक होते हैं। ब्रह्म ग्रंथि मूलाधार और स्वादिष्ठान के मध्य में है, विष्णु ग्रंथि नाभि के पास है, तथा रुद्र ग्रंथि गर्दन में विशुद्धि चक्र के बगल में है।

हमने प्राणायाम का अभ्यास करके अपनी नाड़ियों को शुद्ध कर लिया, इड़ा-पिंगला में प्राणों का प्रवाह संतुलित हो गया, और सुषुम्ना नाड़ी अब जागृत हो रही है, लेकिन सुषुम्ना नाड़ी में कुण्डलिनी के उत्थान के मार्ग में तीन गति अवरोधक हैं। जैसे सड़क पर चलने वाली गाड़ी की रफ्तार को कम करने के लिये सड़क पर अवरोधक बना दिये जाते हैं, वैसे ही हमारे शरीर के भीतर गति अवरोधक या ग्रंथियाँ हैं।

ग्रंथि किसे कहते हैं? नाड़ियों के जाल को। हमारे शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में सोलह प्रकार की ग्रंथियाँ हैं, जो प्राण की गति में अवरोध उत्पन्न करती हैं। इन सोलह ग्रंथियों में तीन मुख्य हैं जिन्हें ब्रह्म ग्रंथि, विष्णु ग्रंथि और रुद्र ग्रंथि कहा गया है। ये ग्रंथियाँ मेरुदंड में सुषुम्ना के क्षेत्र में स्थित हैं। सबसे पहले मूल बन्ध का अभ्यास होता है। चूँकि ऊर्जा का उत्थान मूलाधार से होना है, इसलिये वहाँ के अवरोध को पहले दूर करना है। हठयोग में प्राणायाम की साधना में केवल श्वास पर ही नियंत्रण नहीं होना है, बल्कि श्वास के साथ बंधों का भी अभ्यास होना चाहिये, ताकि प्राण निष्कंटक ऊर्ध्वगामी हो सकें। प्राणों का उत्थान हमारे शरीर के सबसे नीचे वाले क्षेत्र, मूलाधार से होता है, और मूलबन्ध की क्रिया में इस मूलाधार क्षेत्र में संकुचन लाया जाता है। यह संकुचन सबसे पहले ब्रह्म ग्रंथि में प्राण के प्रवाह को पूर्ण रूप से रोक देता है। फिर जब आप संकुचन छोड़ते हैं तो उस क्षेत्र से प्राण दो दिशाओं में जाता है, ऊपर और नीचे की ओर। प्राणायाम के साथ जब हम इस अभ्यास को करते हैं तो प्राण के इस प्रवाह का अनुभव कर पाते हैं।

पंच प्राण

शारीरिक स्तर पर प्राण का जो अनुभव होता है, उसको समझाने के लिये योगियों तथा योग ग्रंथों ने शरीरस्थ प्राण को पाँच भागों में बाँटा है। पहला है अपान वायु, जिसका काम होता है शरीर से विषाक्त तत्त्वों को बाहर निकालना। हम भोजन करते हैं, वह पचता है, उसके बाद अवशेष मल के रूप में बाहर निष्कासित होता है। हम पानी पीते हैं, पानी हमारे शरीर की कोषिकाओं में जाता है, और उसका अवशेष मूत्र रूप में बाहर निकलता है। पानी पीते हैं, धूप में जाते हैं, पसीना निकलता है। वह अवशेष है उस जल का जिसे हमने पिया। निष्कासन की प्रक्रिया, चाहे वह पसीने के रूप में हो या मल-मूत्र के रूप में, वह सब अपान वायु के द्वारा संचालित होता है। अपान वायु का क्षेत्र

मूलाधार और स्वाधिष्ठान है क्योंकि अधिकांश निष्कासन तो मूत्र द्वार और गुदा द्वार के द्वारा ही होता है।

दूसरा शरीरस्थ प्राण हमारे पेट में है, स्वाधिष्ठान से मणिपुर के क्षेत्र में, जहाँ पर पाचन की प्रक्रिया होती है। पाचन के द्वारा हम भोजन के पोषक तत्त्वों को शरीर में ग्रहण करते हैं, और इस काम को करने वाले प्राण को समान वायु कहते हैं। उसके बाद तीसरा वायु हृदय और फेफड़ों को संचालित करता है, जिसे प्राण वायु कहते हैं। अगर श्वास रुक जाये या हृदय की धड़कन रुक जाये तो मृत्यु होगी। अगर अपान वायु में बाधा हो या समान वायु में समस्या हो जाये तो मृत्यु नहीं होगी, लेकिन प्राण वायु में अगर असंतुलन या बाधा हो, तो मृत्यु संभव है। इसके बाद सिर, हाथों और पैरों में जो शक्ति का संचार करता है, वह है उदान वायु। आप चलते हो, दौड़ते हो, वज़न उठाते हो, हाथ से काम करते हो, आपका दिमाग चलता है, आपकी इंद्रियाँ काम कर रही हैं, इन सबको शक्ति की प्राप्ति उदान वायु से होती है। पाँचवा है व्यान वायु, जो रिज़र्व फोर्स की तरह है। जहाँ पर भी इन चार प्राणों में कमी हो जाये, वहाँ व्यान जाकर उस कमी को दूर करता है।

ये हमारे शरीर के पाँच प्राण हैं, और जहाँ पर दो प्राणों का संयोग होता है, वहाँ पर ग्रंथि होती है। जहाँ पर अपान और समान का संयोग होता है, वहाँ पर पहली ग्रंथि, ब्रह्म ग्रंथि है। जहाँ पर समान और प्राण का संयोग होता है, वहाँ पर विष्णु ग्रंथि है, और जहाँ पर प्राण एवं उदान का संयोग होता है, वहाँ पर है रुद्र ग्रंथि। मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध और जालन्धर बन्ध – ये तीन बन्ध इन्हीं तीन ग्रंथियों को खोलने के लिये किये जाते हैं। प्राणायाम के साथ इन तीन बन्धों को लगाने से पहले, अपने आप को प्रशिक्षित करने और शरीर के विभिन्न अंगों की क्षमता को समझने के लिये तथा इन क्षेत्रों में प्राणों को जागृत करने एवं एक दिशा देने के लिये इन तीन बन्धों का अभ्यास सर्वप्रथम अलग-अलग होता है। जैसे श्वास को सिद्ध करने में, चौबीस मात्रा तक आने में समय लगता है, उसी प्रकार इन बन्धों को भी सिद्ध करने में समय लगता है। फिर श्वास के साथ, प्राणायाम के साथ इनका अभ्यास होता है। जब इन तीन बन्धों को हम सिद्ध कर पाते हैं तब जाकर एक चौथे बन्ध का अभ्यास स्वत: होने लगता है, जिसे कहते हैं महाबन्ध। जब मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध और जालन्धर बन्ध एक साथ होते हैं, तो उसको कहते हैं महाबन्ध। महाबन्ध के अभ्यास से ये तीन ग्रंथियाँ खुलती हैं। इन तीन ग्रंथियों में जब प्राणों का

संचार अबाध रूप से होने लगे, तब जाकर सुषुम्ना नाड़ी में कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान संभव हो पाता है।

कुण्डलिनी जागरण

कुण्डलिनी शक्ति फिर कुछ समय के लिये ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे आवागमन करती है। मूलाधार से स्वाधिष्ठान चक्र तक आकर फिर वापस चली जाती है। मूलाधार से स्वाधिष्ठान अथवा मणिपुर आती है, फिर वापस चली जाती है। इस प्रकार, मणिपुर चक्र तक कुण्डलिनी की लीला चलती है, कुण्डलिनी की क्रीडा होते रहती है। इस समय साधक को गुरु के अनुशासन एवं निर्देशों की सबसे अधिक आवश्यकता रहती है। ऐसा नहीं कि अब हमारी कुण्डलिनी जग गयी, और अब हम चले स्वाधिष्ठान-मणिपुर की ओर और अन्त में चले गये सहस्रार तक। यह संभव नहीं होता है, क्योंकि कुण्डलिनी के जागरण से भौतिक गुणों का गुरुत्वाकर्षण और शक्तिशाली हो जाता है। वासना बड़ जाती है, भूख बड़ जाती है, क्रोध बड़ जाता है, द्वेष बड़ जाता है, क्योंकि ये सब हमारे जीवन की गुरुत्वाकर्षण शक्तियाँ हैं जो हमें इस धरातल पर स्थायी रूप से बाँधकर रखती हैं।

इसीलिये इस अवस्था में साधक के लिये गुरु का अनुसाशन और निर्देश अत्यंत आवश्यक रहता है। उसके बिना कुण्डलिनी का स्थायी उत्थान नहीं होता। जब गुरु का नियंत्रण पूरा रहता है तो साधक की मनोवृत्तियों और विचारों को भी वह नियंत्रित करता है। गुरु कहता है, 'नहीं, तुम यह गलत सोच रहे हो, अपनी सोच को ठीक करो। तुम्हारा यह व्यवहार गलत है, उस व्यवहार में मत जाओ।' साधक को आभास नहीं होता, उसके लिये तो यह एक सहज अवस्था है। आज भी अगर आपके मन में उल्टे-सीधे विचार आते हैं तो आप सजग नहीं हैं कि वे बुरे विचार हैं। आप तो उनमें लिप्त रहते हैं। लेकिन जब गुरु कहता है कि 'तुम्हारा यह व्यवहार, विचार, आचरण और कर्म ठीक नहीं है, उसको सुधारना है' तो आपको इस ओर ध्यान देना होगा। अगर आप गुरु के प्रति समर्पित हैं और उनपर विश्वास है, तो आप उनके निर्देशानुसार करेंगे और तब जाकर आपका उत्थान होगा।

बहुत-से लोग गुरु के प्रति समर्पित नहीं होते, केवल दिखावा और ढोंग रहता है। ऐसे लोगों का पतन निश्चित रहता है क्योंकि वे बात मानते नहीं हैं, सोचते हैं कि 'गुरुजी मेरे मार्ग में, मेरे उत्थान में, मेरे मोक्ष में बाधा डाल रहे

हैं। मुझसे कहते हैं कि ऐसा मत करो, वैसा मत करो। मैं तो एकदम ठीक हूँ।' वहाँ पर साधक का पतन निश्चित रूप से होता है।

एक बार हम अपनी कुण्डलिनी शक्ति को अनाहत चक्र में ले आते हैं, तब फिर हम निम्न वृत्तियों से अपने आप को मुक्त कर लेते हैं। इनसे मुक्त होकर फिर हम ध्यान की अवस्था में प्रवेश करते हैं। पहले ध्यान की अवस्था नहीं थी। हाँ, हम आँख बंद करके बैठते थे, लेकिन वह ध्यान नहीं था। अनाहत चक्र में पहुँचकर हम वास्तविक ध्यान की अवस्था को प्राप्त करते हैं। इस ध्यान की अवस्था में फिर नाद का अनुभव होता है, जिसकी चर्चा चौथे श्लोक में की गयी थी। उस नाद को बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा के रूप में अनुभव किया जाता है। जब मनुष्य को धीरे-धीरे नाद का ज्ञान होता है, तब फिर उस नाद में ही प्राणों और मन का लय होता है। उसके बाद फिर कुण्डलिनी ऊर्ध्वगामी होती है और सहस्रार में पहुँचती है। तब जाकर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है, अपने जीवन में सिद्ध बनता है। यहाँ सिद्ध का तात्पर्य चमत्कारी बाबा से नहीं, बल्कि जिसने स्वयं को अपने नियंत्रण, अपने वश में किया है, उसे सिद्ध कहते हैं। कोई भी भौतिक दुर्गुण मनुष्य की चेतना को माया के इस जंजाल में न फँसा सके, वह है सिद्धि।

मन और प्राण

लोग बन्धों को मात्र एक शारीरिक क्रिया समझते हैं और सोचते हैं कि इन शारीरिक क्रियाओं से क्या होगा, हमें तो ध्यान करना है, हमें अपना मन शांत करना है, हमें तो आंतरिक दर्शन करना है। इसलिये वे इन शारीरिक प्रक्रियाओं पर ध्यान नहीं देकर, ध्यान के अभ्यास पर ध्यान देते हैं। ध्यान पर ध्यान देने से कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि आप केवल मन की ऊपरी सतह को देख रहे हैं। मन की ऊपरी सतह पर जो तरंगें उत्पन्न हो रही हैं, जिनको विचार कहा जाता है, उन्हें ही आप देख पा रहे हो, पूरे मन को नहीं। विचारों को

भी आप पूर्ण रूप से नहीं जान सकते हो। आखिर आप दिन में कितने विचारों के प्रति सजग रहते हो? दस, पन्द्रह, बीस, पचास, सौ? लेकिन आप यह नहीं जानते कि जाग्रत अवस्था में हमारे मन के भीतर रोज़ लगभग 50,000 विचार गुज़रते हैं! ध्यान की अवस्था में क्या आप सभी पचास हजार का ख्याल कर पाते हो, या केवल पाँच-दस का? जो पचास हजार विचार आपके मन में आते-जाते हैं, उनमें अस्सी प्रतिशत विचार दोहरा रहे हैं अपने आप को, जिसके कारण हमलोग चिंता, तनाव और परेशानियों का अनुभव करते हैं।

इन दुहराने वाले विचारों पर मनन करते-करते आप शायद दो या तीन परिस्थितियों को ही देख पाते हैं जो आपके मन के भीतर प्रबल रूप से प्रकट हो रही हैं, उससे अधिक नहीं। दूसरी बात, इन पचास हजार विचारों में अस्सी प्रतिशत विचार नकारात्मक हैं, जो आपके द्वेष, अभिमान, स्वार्थ, कामना, वासना और राग से जुड़े हैं। ये अस्सी प्रतिशत विचार तामसिक हैं।

जब आप मन पर ध्यान लगाते हो तो आप क्या देखते हो? केवल वही विचार जो आपके मानसिक समुद्र की सतह पर एक तरंग के रूप में प्रकट हो रहे हैं। आप उन्हीं को देख पाते हो, लेकिन उनको शांत भी नहीं कर पाते हो। तो यह किस प्रकार का ध्यान हुआ? इसीलिये जिन योगियों ने योग को सिद्ध किया है, वही ध्यान कर पाते हैं, सामान्य व्यक्ति नहीं। यह एक भ्रांति है, भ्रम है कि हम आँख बंद करके ध्यान कर रहे हैं। यह मात्र आत्म-सम्मोहन की स्थिति है कि मैं यह सब कर रहा हूँ, लेकिन योग दर्शन में मन का कोई अस्तित्व नहीं है। मन के अस्तित्व का भान तब होता है, जब आप मन को प्राण के साथ जोड़ें। मन और प्राण जब जुड़ते हैं, तब जाकर हम कुछ आध्यात्मिक अनुभूतियों को समझने में सक्षम हो पाते हैं। भले ही पूरी तरह नहीं समझ पाते हैं, लेकिन उनको देख सकते हैं।

बन्धों का चक्रों पर प्रभाव

यही बात योग तारावली में आदिगुरु शंकराचार्य समझा रहे हैं, और उन्होंने जो क्रम अपनाया है, वह ध्यान का क्रम नहीं, हठयोग का क्रम है – सबसे पहले शरीर की शुद्धि, फिर प्राणायाम का अभ्यास, फिर मुद्राओं और बन्धों का अभ्यास। लेकिन जो व्यक्ति साधक नहीं है, जिसका योग से परिचय नहीं है, वह इस विचारधारा को नहीं समझ सकता। आखिर प्राणायाम करने के लिये वह क्या करेगा? किसी नौसिखिये शिक्षक के पास जायेगा और कहेगा कि

हमको प्राणायाम बतलाओ। वह उसे कपालभाति या भ्रामरी या भस्त्रिका जैसे दो-तीन प्राणायाम सिखा देगा। उस नौसिखिये शिक्षक से बन्ध के बारे में पूछेगा तो शिक्षक भी किताब देखकर कहेगा कि गर्दन को नीचे करो, यह जालन्धर बन्ध है; पेट को अन्दर करो, वह उड्डीयान बन्ध है; गुदा द्वार को खींचो, यह मूल बन्ध है। एक सामान्य शिक्षक साधक को इससे ज़यादा नहीं बता सकता।

जिस साधक ने इस प्रक्रिया को अपने भीतर अनुभव किया है, देखा है, जाना है और समझा है कि इससे शरीर, मन और प्राणों के भीतर क्या होता है, वही सही व्याख्या और टिप्पणी कर सकता है। हमारे गुरुजी एक एसे मनीषी रहे हैं, जिन्होंने किसी ग्रंथ की व्याख्या नहीं की, लेकिन उन्होंने जो अनुभव किया, देखा और जाना, वही हमलोगों को बतलाया है। ऐसी चीज़ें बतलायी हैं, जो न स्वात्माराम, न ऋषि घेरंड और न महर्षि पतंजलि बतला पाये हैं। उन लोगों ने तो केवल सूत्र लिखे, और समझने का काम आप पर छोड़ा है। हमारे गुरुजी का काम योगविद्या का पुनर्जागरण था, इसलिये मैं उन्हें महर्षि पतंजलि, स्वात्माराम और घेरंड ऋषि से भी महान् मानता हूँ। वे उस प्रक्रिया के साक्षी बने, उन्होंने अपने भीतर उस क्रम को देखा, फिर व्यावहारिक और वैज्ञानिक तरीके से समझाया कि शरीर, प्राणों और मन के साथ ऐसा होता है।

योग तारावली के संदर्भ में बन्धों और प्राणायामों के बारे में उन्होंने जो बात कही है, अगर आप उसे समझेंगे तो जानेंगे कि हठयोग की प्रक्रिया कितनी वैज्ञानिक और व्यावहारिक है। हमारे गुरुदेव समझाते हैं कि प्राणायाम के द्वारा प्राणों का उत्थान होता है, लेकिन बन्धों के द्वारा उस प्राण के प्रवाह को दिशा प्रदान की जाती है। मूलबन्ध मूलाधार चक्र से संबंध रखता है, पर इसके अभ्यास के साथ दो चक्रों में स्पन्दन होता है, एक चक्र है मूलाधार, और दूसरा है आज्ञा। दोनों साथ में नहीं हैं, विपरीत दिशा में हैं, दोनों के बीच की दूरी बहुत है। मूलबन्ध के अभ्यास से हमलोगों के भीतर परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र जागृत होता है। परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र पूरे शरीर और मस्तिष्क में संवेदना का प्रसारण करता है। जब हम मूलबन्ध का अभ्यास करते हैं तो परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र की जागृति, मस्तिष्क में संवेदना, आज्ञा चक्र और मूलाधार चक्र में स्पन्दन तथा प्राणों की जागृति होती है। साथ ही नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली अपान वायु अपनी दिशा बदलती है, अधोगामी होने की बजाय अब ऊर्ध्वगामी होती है। ऊर्ध्वगामी होने पर उस प्राण का प्रवाह मणिपुर क्षेत्र में आता है। उड्डीयान बन्ध करने के पश्चात् ऊर्ध्वगामी प्राण

वायु अधोगामी होती है, और इस प्रकार अपान और प्राण वायु का मणिपुर क्षेत्र में मिलन होता है।

कुण्डलिनी योग में बतलाया गया है कि स्वाधिष्ठान से विशुद्धि तक के सभी चक्र मेरुदंड में अवस्थित हैं। दो चक्र जो मेरुदंड में नहीं हैं, वे हैं नीचे में मूलाधार और ऊपर में आज्ञा चक्र। परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र से जुड़े रहने के कारण दोनों का आपसी संबंध रहता है। इसलिये जब हम मूलबन्ध लगाते हैं तो ये दोनों चक्र प्रभावित होते हैं, दोनों में स्पन्दन होता है, दोनों में प्राणों की जागृति होती है। अपान वायु और प्राण वायु अपनी दिशा बदलते हैं और समान वायु के क्षेत्र में एक-दूसरे से टकराते हैं। उदर क्षेत्र में जब दोनों का मिलन समान वायु के साथ होता है, तब फिर प्राण आते हैं मणिपुर चक्र में और वह चक्र जागृत होता है। उस समय उड्डीयान बन्ध लगाते हैं। हर बन्ध में अपने आप कुम्भक भी लगता है। उस समय आप श्वास नहीं ले सकते हो। श्वास रुक जाती है, स्थिर हो जाती है। केवल श्वास ही नहीं, मानसिक तरंगें भी शिथिल हो जाती हैं, स्थिर होने लगती हैं।

जालन्धर बन्ध कंठ क्षेत्र में लगता है। देखा जाए तो शरीर की अधिकांश नसें, चाहे वे रक्त संचार वाली हों, चाहे संवेदना का प्रसारण करने वाली हों, चाहे प्राण की नाड़ियाँ हों, वे पूरे शरीर से जब ऊपर आती हैं तो कंठ से ही गुज़रकर मस्तिष्क में जाती हैं। यहाँ पर सभी नसों का जाल होने के कारण इस क्षेत्र को जाल कहा गया है, और इसीलिये जालन्धर शब्द आता है। जालों में जो प्रवाह हो रहा है, जो धारा बह रही है, उसे रोक देना, धारण कर लेना, यह है जालन्धर बन्ध।

कुण्डलिनी योग दर्शन के अनुसार मस्तिष्क में एक छोटा-सा चक्र होता है, बिंदु। उसके नीचे एक और छोटा चक्र होता है, ललना। कुछ लोग कहते हैं कि बिंदु चक्र से एक रसायन की उत्पत्ति होती है, कुछ ग्रंथ कहते हैं कि ललना चक्र से उस रसायन की उत्पत्ति होती है। हमारे गुरुदेव ने अनेकों बार कहा है कि अमुक ग्रंथ में ऐसा लिखा है, दूसरे ग्रंथ में वैसा लिखा है, लेकिन मैंने जो अनुभव किया है वह अलग है। ग्रंथों का अपना मत होता है, लेकिन जिसने एक प्रक्रिया को साधा है, उसका भी मत होता है, क्योंकि उसने अनुभव किया है, देखा है, समझा है, जाना है। श्री स्वामीजी बतलाते हैं कि बिंदु चक्र से एक रसायन की उत्पत्ति होती है, जिसको हमलोग अपनी भाषा में अमृत कहते हैं। वह अमृत नाभि चक्र में गिरता है और वहाँ पर प्राणाग्नि के द्वारा वह जलता

है। जब वह रसायन जलता है तब मनुष्य अपने जीवन में जरा और मृत्यु का अनुभव करता है। बूढ़े हो रहे हैं, अंग शिथिल हो रहे हैं, आँखें देख नहीं पा रही हैं, कान सुन नहीं पा रहे हैं, दाँत गिरते जा रहे हैं, मांसपेशियाँ कमज़ोर होती जा रही हैं – ये सब जरा के, बुढ़ापे के लक्षण हैं। जैसे-जैसे हमारा शरीर और इंद्रियाँ शिथिल होती हैं, वैसे-वैसे असक्षम भी होती जाती हैं, और अंत में यह शरीर और इंद्रियाँ मृत्यु को प्राप्त करती हैं, मतलब निष्क्रिय हो जाती हैं। कुछ नहीं होता, एक संवेदना का भी आदान-प्रदान नहीं होता, इसी को मृत्यु माना गया है। लेकिन अगर उस रसायन को जालन्धर बन्ध की क्रिया के द्वारा अपने विशुद्धि चक्र में धारण कर लिया जाता है, तो मनुष्य कभी भी जरा का शिकार नहीं होता, वह नित्य युवा रहता है।

उदाहरण के तौर पर कृष्ण जी को नित्य युवा कहते हैं। सौ साल की उम्र में भी वे अठारह-बीस साल जैसे दिखलायी देते थे। बुढ़ापे का कोई चिह्न नहीं था। झुर्रियाँ नहीं थी, बाल सफ़ेद नहीं हुए थे। अब लोग कहते हैं कि वे अवतारी पुरुष थे, इसलिये उनका शरीर ऐसा था, लेकिन अगर हम योग की दृष्टि से देखें, तो वे उस अमृत को अपने गले में ही धारण करके हमेशा युवक रूप में दिखलायी दिये। शिव जी का भी उदाहरण देख लो, उन्होंने कालकूट जहर को अपने गले में ही धारण किया। अगर वह नीचे उतरता तो हरिः ॐ तत्सत्! लेकिन उन्होंने विष को गले में धारण किया, और गले में क्या टपकता है? अमृत। इस प्रकार कालकूट विष के प्रभावों को अमृत ने शांत कर दिया और तब से शिव जी नीलकंठ कहलाये। आखिर कंठ में जो विष धारण किया था, उसका प्रभाव तो दिखेगा ही, लेकिन अमृत ने उस विष को शांत किया।

यौगिक दृष्टिकोण से जालन्धर बन्ध के द्वारा हम उस रसायन को अपने गले में, विशुद्धि चक्र में धारण कर सकते हैं और प्राणों के प्रवाह को बदल सकते हैं। जब आप जालन्धर बन्ध लगाते हो तो ऊर्ध्वगामी प्राण वायु अधोगामी होती है। मूलबन्ध लगाते हो तो अधोगामी अपान वायु ऊर्ध्वगामी होती है। दोनों का मिलन होता है समान वायु के क्षेत्र में, नाभि के क्षेत्र में। जब उड्डीयान बन्ध लगाते हो तब फिर प्राण और अपान का संयुक्त स्वरूप सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करता है। सुषुम्ना जागरण के बाद फिर कुण्डलिनी जागरण होता है। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र से मणिपुर चक्र पहुँचती है, और उसके बाद वापिस आने-जाने का क्रम समाप्त करके ऊर्ध्वगामी बनती है। अनाहत में आकर स्थित होती है और यह है लय की अवस्था। इसके बाद मात्र उत्थान होते रहता है।

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

राजयोग सब के लिए

अवलोकन और अभ्यास कैप्सूल

पृष्ठ 194, ISBN: 978-81-94932-88-8

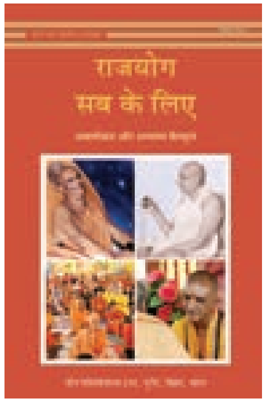

उपलब्ध

यह पुस्तक राजयोग के विभिन्न पहलुओं जैसे उद्देश्यों, बाधाओं एवं जीवनशैली में सामंजस्य को उजागर करती है। विद्यार्थी, परिवार, वयोवृद्ध एवं अन्य वर्गों के लोग अपने दैनिक जीवन में राजयोग का समायोजन करने का व्यावहारिक निर्देश इस पुस्तक से प्राप्त कर सकते हैं। व्यसन, असुरक्षा का भाव एवं चिरकालीन थकान जैसी अवस्थाओं के प्रबन्धन हेतु राजयोग कैप्सूल का परामर्श दिया गया है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें